शोध और सृजन की
प्रमुख त्रैमासिकी

मामुलिया

अङ्क-पांच

सं० २०३६

वार्षिक सहयोग :
पन्द्रह रुपया

बुन्देलखण्ड साहित्य अकादमी प्रकाशन

स्तम्भ

निवेदन

- मामुलिया में प्रकाशनार्थ प्रेषित रचनायें फुलस्केप साइज के कागज पर एक तरफ सुलिखित या टंकित हों। अस्वीकृत रचनायें लौटाने की व्यवस्था नहीं है। स्तरीय और उपयोगी रचनाओं की स्वीकृति-सूचना यथा समय स्वतः भेज दी जायेगी।
- विशिष्ट स्तम्भों के लिए भेजी गई रचनाओं के एक सिरे पर स्तम्भ का नाम अंकित होने से सुविधा होगी।
- 'पोथियों का पन्ना' स्तम्भ के लिए पुस्तक की दो प्रतियाँ आना आवश्यक हैं।

सहयोग

- ☐ स्तरीय रचनायें भेजने का आपसे अनुरोध है।
- ☐ पत्रिका के आजीवन एवं वार्षिक सदस्य बनकर अनुग्रहीत करें।
- ☐ पत्रिका के लिए विज्ञापन भेजकर अपने को लाभान्वित करें।

सम्पादक : डा० नर्मदा प्रसाद गुप्त

सह सम्पादक : डा० वीरेन्द्र 'निर्झर

सम्पादन सहयोग : डा० बलभद्र तिवारी, डा० कृष्ण कुमार हूँका, हरिसिंह घोष, सुरेन्द्र शर्मा, आशाराम त्रिपाठी

सम्पर्क सूत्र :—सम्पादकीय : डा० नर्मदा प्रसाद गुप्त, शुक्लाना, छतरपुर, म० प्र०

व्यवस्थापकीय : बुन्देल खण्ड साहित्य अकादमी, छतरपुर

● बहुत कार्य करना है

मामुलिया का फाग-विशेषांक पूरा पढ़ गया। इस बहाने से अपने प्रदेश की भावनाओं से अभिभूत हो सका। आपका यह प्रयास अत्यन्त महत्वपूर्ण सिद्ध होगा, यदि पत्रिका निरंतर इसी मनोयोग से प्रकाशित की जाती रही। बहुत आवश्यकता है लोकमानस में पहुँचने और उसके परिष्कार और परिशीलन की। आपने बीड़ा उठाया है, यह शुभ है। आपको निश्चय ही सफलता मिलेगी।

मैंने 'बादल' जी की पुस्तक खरीदी और पढ़ी थी। अब आपके लेख से तर्क संगत जानकारी हुई। बधाई है। डा० अयोध्या प्रसाद द्विवेदी का लेख भी हृदयस्पर्शी है। ऐसे लेखों का भी समावेश पत्रिका के पाठकों की रुचि को रुचिर बनाने में योगदान करेगा। अभी 'ईसुरी' की फागों पर बहुत कार्य करना होगा। नये 'फगैतों' को नये संदर्भ में लिखने की प्रेरणा देनी होगी।

—केदारनाथ अग्रवाल, सिविल लाइन्स, बांदा।

● जाग्रति का कार्य

बुंदेलखण्ड साहित्य अकादमी छतरपुर द्वारा प्रकाशित 'मामुलिया' त्रैमासिक पत्रिका के सभी अंक मैंने ध्यानपूर्वक पढ़े और महसूस किया कि यह पत्रिका बुंदेलखण्ड जैसे पिछड़े प्रदेश की जाग्रति के लिए अच्छा कार्य कर रही है। उसमें उसी क्षेत्र की भाषा में कहानियाँ, कविताएँ, लोकगीत, लोककथाएँ एवं वार्ता आदि जो छपते हैं, उनका गांव के लोगों पर निश्चित ही अच्छा प्रभाव पड़ता है।

मेरा सुझाव है कि इस पत्रिका को शासन द्वारा अनुदान एवं प्रोत्साहन मिलना चाहिए। विज्ञापन द्वारा भी इसकी सहायता की जा सकती है तथा इसे पंचायतों एवं शिक्षण-संस्थाओं में मँगाने के आदेश दिये जा सकते हैं। मुझे विश्वास है कि जनहित का ध्यान रखते हुए इस पत्रिका को उचित प्रोत्साहम मिलेगा।

—डूँगर सिंह, संसद सदस्य, हमीरपुर, उ० प्र०

● कुछ उपेक्षाएँ

विगत वर्ष के सभी अंक देखे, अनेक विशेषताएँ, अनेक प्रशंसनीय गुण उनमें यथोचित हैं। अन्य पाठकों ने मामुलिया के प्रशंसनीय पक्ष पर बहुत कुछ लिखा है। किन्तु मैं यहाँ प्रशंसनीय स्थलों की चर्चा नहीं करूँगा, कहाँ तक करूँ? अस्तु उन बिन्दुओं पर चर्चा करूंगा जिनकी कमी प्राय: खलती रही है। यथा—

'मामुलिया' का प्रथम अंक जिस आशा का संकेत लेकर प्रस्तुत हुआ था वह आशा इसलिए धूमिल हो गई कि स्थाई स्तम्भों की क्रमशः उपेक्षा हो चली थी। "शब्द बोलते हैं" स्तम्भ में मात्र बुन्देली शब्दों के व्युत्पत्ति सूचक कलेवर की अपेक्षा थी। मामुलिया ने लक्ष्य भुला दिया। इसी प्रकार 'अनूदित' स्तम्भ की भी उपेक्षा हो गई है। मामुलिया के सभी अंकों में कविताओं की उपेक्षा स्पष्ट दीखती है। जहाँ निबन्ध साफ-सुथरे छपे गये वहीं कविताएँ एक ही पृष्ठ पर गड्ड बड्ड करके छापी गई। अन्तिम अंक फाग विशेषांक था जिसमें बुन्देलखण्ड के वर्तमान सन्दर्भ में प्रतिष्ठापित फागकारों की उपेक्षा होने का कारण समझ में नहीं आया। फिर भी मामुलिया कुल मिलाकर इसलिए उपयोगी है कि कुछ न होने से तो मामुलिया बहुत कुछ है ही।

—सत्यार्थी

● विरोधी विचारधाराएँ

'मामुलिया' का चतुर्थ अंक (फाग विशेषांक) पढ़ा। पत्रिका का इतने कम समय में इतनी अधिक उन्नति कर लेना निश्चित रूप से उसके सम्पादक-मण्डल की निष्ठा, लगन और कठिन परिश्रम की ओर इंगित करता है। यह अंक बुन्देली फाग साहित्य की अमूल्य निधि है। सभी लेख विद्वान लेखकों के कठिन परिश्रम और सूक्ष्म शोध दृष्टि के परिणाम हैं। लेख एक से एक बढ़कर हैं। फिर भी कुछ बातें खटकने वाली हैं जिनकी ओर संकेत कर देना उचित समझता हूँ।

समीक्ष्य अंक के कुछ लेखों में परस्पर विरोधी विचारधाराएँ मिलती हैं। वैसे तो लेख अलग-अलग लेखकों द्वारा लिखे गए हैं, ऐसी स्थिति में मतवैभिन्य स्वाभाविक माना जा सकता है किन्तु एक ही अंक के लेखों में यह बात जरा खटकती है। इसी प्रकार एक ही अंक के एक लेख में किसी मान्यता का खण्डन और दूसरे लेख में उसी मान्यता की स्थापना भी खटकती है। उदाहरण के लिए 'बुन्देली फाग का उद्भव और विकास' नामक लेख से डा० नर्मदा प्रसाद गुप्त ने डा० श्याम सुन्दर बादल के शोध प्रबन्ध 'बुन्देली का फाग-साहित्य' की कुछ मान्यताओं पर आपत्ति प्रकट करते हुए उनका खण्डन किया है जब कि आगे 'ईसुरी पूर्व का प्राचीन फाग काव्य' नामक अपने लेख में डा० बादल ने उन्हीं मान्यताओं को पुनः दोहराया है। कुल मिलाकर पत्रिका का यह अंक बुन्देली फाग साहित्य के परिप्रेक्ष्य में काफी महत्वपूर्ण है।

एक सुझाव यह देना चाहता हूँ कि 'फाग विशेषांक' की भाँति ही 'अल्हा विशेषांक' निकालने पर भी विचार करें। आल्हा मुख्य रूप से श्रावण के महीने में गाया जाता है। अतः यदि 'मामुलिया' का इस वर्ष का द्वितीय अंक 'आल्हा विशेषांक' के रूप में निकालें, तो यह एक और महत्वपूर्ण-पुनीत कार्य होगा।

—देवेन्द्र सिंह, शोध छात्र, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी।

● फाग विशेषांक पर एक दृष्टि

महाकवि ईसुरी चौकड़िया के शीर्षस्थ काव्यकार किंवा फागमाला के सुमेरु हैं, सर्वथा वन्दनीय अभिनंदनीय हैं। साथ ही डा० चौरसिया का 'व्यास' जी को अन्य सामान्य कवियों की कोटि में रखना या नगण्य मानकर मात्र ईसुरी का अनुवर्ती मानकर पिष्टपेषण करनेवाला कवि कह देना नितान्त सोचनीय है।

समीक्षा के तौर पर सन्दर्भित विशेषांक में डा० 'अयोध्या प्रसाद द्विवेदी' की गौरवान्वित वासन्ती स्मृति, डा० 'नर्मदा प्रसाद गुप्त' का 'बुन्देली फाग का उद्भव और विकास' पर अनुसंधानात्मक अनूठा विवरण, 'बादल जी' का 'प्राचीन फाग काव्य समीक्षा में फागों का विविध रूप', डा० चौरसिया की गंगाधर व्यास के प्रति ज्यादती, श्री शुक्ल जी का नीर क्षीर विवेक, डा० हरगोविन्द सिंह का 'ख्यालीराम का योगदान' कौशिक जी का अज्ञात कवियों की शृंखला प्रस्तुत करना, 'डा० बिन्दु' के बुन्देली में भाव संगीतात्मकता में डूबे विचार पढ़े।' 'बिन्दु' जी की शैली कुछ अटपटी लगी और अस्वाभाविक-सी लगी शायद मेरी अल्पज्ञता ही ऐसा कहने की धृष्टता कर रही है। अच्छा होता पूर्ण वाक्य विन्यास को दृष्टिगत रखते हुये जबरिया तौर से भाषाई अलंकरण से सज्जित न किया जाता तो भाव संप्रेषणता अचूक निशाने की तरह होती। इसके अलावा डा० तिवारी का शब्द-सामर्थ्य श्लाघ्य है; डा० निर्झर की विचार-निर्झरिणी ने तो रसविभोर ही कर दिया, बुधौलिया जी के 'फड़', डा० घोष की भक्ति भावना मन भावन रही, प्रमोद पाठ की बुन्देली संस्कृति निबन्ध आंचलिक झलकियों का निदर्शन कर रहा है।

मऊरानीपुर के प्रतिष्ठित कवि श्री जैतराम धमेनियाँ 'जैत' के सौजन्य से श्री मोतीलाल विलैया ने 'ईसुरी गंगाधर की संयुक्त फाग' का उद्धरण संप्रेषित किया, उसके सन्दर्भ में सम्पादक महोदय चौथी पंक्ति को ईसुरी का होना अस्वीकारते हैं, श्री जैत का कहना है कि क्या कृपया स्पष्ट करेंगे?

—मोती लाल सुल्लेरे 'राहुल', मऊरानीपुर, झांसी

बुन्देली फागों का विश्वकोष : मामुलिया अंक-४

'फागें' लोक जीवन के सत्य-शिव-सुन्दर की मधुर अभिव्यक्ति हैं। बुन्देली भाषा की एकमात्र त्रैमासिकी 'मामुलिया' ने अंक ४ में फागों के माध्यम से सप्तवणी इन्द्रधनुषों की सर्जना का अभिनव प्रयास किया है।

फागों पर मामुलिया का यह विशेषांक गागर में सागर है। शोध लेखों, फाग-संग्रह, गीतिका तथा व्यंग्य शीर्षक स्तम्भों के माध्यम से बुद्धिजीवियों, लोकगायकों, काव्यप्रेमियों की मानसिक सन्तुष्टि हेतु पर्याप्त सामग्री प्रदान की गई है। यह फाग विशेषांक लीक से हटकर परम्परागत सतही लेख व रचनाओं का मोह छोड़कर नवनीतवत् ठोस तथा गम्भीर रचनाएँ समाहित किए हैं, यही इसकी विशेषता है।

फाग बैंक : अभिनव योजना

बुदेलखण्ड साहित्य अकादमी द्वारा फाग बैंक की प्रस्तुत योजना सराहनीय है, किन्तु इसे व्यावहारिक रूप दिया जाकर विस्तार से प्रकाशित किया जाना चाहिए था। मात्र फागें ही नहीं 'होरी' तथा 'राई' गीत भी बुन्देली के प्राण हैं। फाग बैंक न होकर 'बुन्देली लोकगीत अधिकोष' हो, जिसकी विविध शाखाएँ एक-एक विधा समाहित के तथा प्रत्येक में पुराने तथा नए रचनाकारों व रचनाओं के संकलन-प्रकाशन की व्यवस्था हो। काम निस्संदेह जीवट का है, किन्तु अकादमी ने जिस तरह मामुलिया को प्रस्फुटित तथा पल्लवित किया है, उससे यह आशा बाँधती है कि वह यह भी कर सकेगी। अधिकोष में प्रत्येक विभाग के प्रभार में पृथक-पृथक विद्वान् हों। डा० नर्मदा प्रसाद गुप्त, डा० कृष्ण कुमार हूँका, डा० वीरेन्द्र 'निर्झर', शिवकुमार 'अर्चन' आदि विद्वानों के निर्देशन में पृथक्-पृथक् कार्य हो। बुन्देली के हर आयाम को संरक्षण-संवर्धन की आवश्यकता है। सहयोगी भी हैं। आवश्यकता है आह्वान की, पहल करने की।

रस की पिचकारी सी लागें जे बुन्देली फागें—

परम्परागत लज्जा वन्धुओं से लेकर आधुनातन आधुनिकाओं तक हर पीढ़ी की फागें संग्रहित कर ममुलिया ने एक उपलब्धि प्राप्त की है। हर रंग और हर ढंग की फाग अपनी बांकी-बंकिम दृष्टि से पाठक को मोहित करने में पीछे नहीं रहती। परम्परा से हटकर हास्य व्यंग्य की छटा साथ में परिवेश से निकटता भी—

"राधे सजी सखिन की पलटन आप वनी लपटंटन।
ललिता सूबेदार सलामी, देन लगी फरजंटन।

पथरकला सन सेन संवारी वरदी पैरी बनठन।
राइट-लेफ्ट मिचन नैनन की खोलन खोल फिरंटन।
ईसुरी कृष्णचंद मन व्याकुल बनो रहो है घंटन।"

अंग्रेजी राज्य के युद्धमयी परिवेशों को उजागर करते इसे अंश के बाद देखिए स्वाधीनता के बाद की झाँकी—

"जब से उठो सुराजी झण्डा नाम लिखायें गुण्डा।
तुबक तीर तरवार तमंचा लाठी लंए औ झण्डा।
औ चाहा करन राज जे हैं भौतउ मुस्टण्डा।
सैन चलाउत नैन मटकाउत जे चले झुण्ड के झुण्डा।
कहे "मलखान सिंह" ने देखो लगन चाउत इन्हें फफुंडा।"

फागाचार्य ईसुरी की तूलिका से किशोर मन की सहज अभिव्यक्ति की सरस जांकी—

"वे दिन गौने के कब आबैं जब हम ससुरें जाबैं।
बारे बलम लिबउआ होकें डोला संग सजाबैं।
गा गा गुइयां गाँठ जोर कें, दोरे लौं पौचाबैं।
होते लगा सास ननदी के चरनन सीस नबाबैं।
'ईसुर' कवै फलाने जू की दुलहिन टेर कुआबैं।"

मिलन-विरह, मनुहार, तकरार आदि सिंगार के विविध रंग इस विशेपांक में यत्र-तत्र नहीं, सर्वत्र बिखरे हुए हैं।

मारे नैन तिरीछे करकें—

नायिका के नयन-कटाक्षों के बांकी-झांकी द्रष्टव्य है—

"मारे नैन तिरीछे करके, काजर कोरन भर के।
जैसे व्याध, मृगा के ऊपर छोड़त बान समर के।

ईसुरी की नायिका की तो छटा ही अलग है—

"अंखियां पिस्तौलें से भर कै, मारन चात समर के।
गोली लाज दरद के दारु गंज कर देत नजर के।"

मीठी चितवनों का असर देखिए—

"चितवन में टौना डार गई मों चुअत पसीना नार गई
करकें सैन तीर सो दै गई मदन मरोरन मार गई"

रज को सबई उड़ाबें—

"कछू पुरानी रंगतवारी नओ-नओ रस पागै"

परम्परा की पुरातनता को अधुनातनता से समन्वित कर मामुलिया ने फागों के भविष्य को निखारने का रचना की परम्परा को बढ़ाने का भी दायित्व उठाया है। यह कम उपलब्धि नहीं है।

द्वारका प्रसाद 'बेचैन' का कथ्य और विषय दोनों ही भिन्न है--

"काये काऊ सबई सतायें, एकई से का चायें।
आँख मिलायें न सूरज सैं रज को सबई उड़ायें।
गड़े गैल में पथरन सें बच कंकरन को ठुकरायें।
सुई सें सी-सी करत रुई कों, सी-सी ठोके दबायें।"

परिवेश से जुड़ी एक रचना मातादीन 'भारती' की इस प्रकार है—

"जो पर भेद-भाव के मारें, जात न तनकऊ वारें।
धन-निरधन की नां पर धर रये जात पाँत दीवारें।
वर्ग-भेद को लगों बड़ेरो जेई लिलोरा पारें।
छुआछूत कौ भूतन सौ घर कैसे इयै निबारें।
भाई-भतीजी बाद भारती जे हैं विसम कगारे।"

रसना राम को नाम नगीना—

फागों की आध्यात्मिकता प्रायः अनचीन्ही रही है, लेकिन 'मामुलिया' ने भक्ति और वैराग्य के साथ आध्यात्म को भी समेटा है—

"एक दिन होत सबई को गौनों होनो औ अइहोनो।
जाने परत सासरें मइयां बुरऔ लगै चाय नोनों।"

फागों के साथ गीतों को भी मिला लिया मामुलिया ने। स्व० माखनलाल जी की फाग रचना का पक्ष प्रायः अचर्चित रहा है—

देखऊँ यौ मधुर मधु जंग
अंगनन में फाग खैले, रंग ले श्रीरंग।

तथा— खेलत फाग नवीन किसोरी
नन्द किसोर मनावत खेलहुँ होरी॥

उनकी दो रचनाएँ हैं। ब्रजलाल मिश्र की 'पलकों के काजल पर साजन का नाम' मधुर रचना है।

फागों पर शोधपूर्ण लेख गागर में सागर है। उन पर चर्चा के लिए अलग ही अवसर चाहिए। विविध पहलु, विविध आयाम, इतिहास, उद्‌गम व विकास तथा भाव, कला व रचना के विभिन्न दृष्टियों के साथ जाने अनजाने फागकारों को समेट कर मामुलिया ने इसे शोध छात्रों के लिए संग्रहणीय बना दिया है।

मामुलिया हो गई मामुलिया—

नई-नवेली, रंग-रंगीली, छैल-छबीली मामुलिया से फागें खेलने से कुंजीलाल पटेल कुंज नहीं चूके—यथा—

पहनी मामुलिया ने चोली छतियन पै अनमोली।
कर सोरा सिंगार मनोहर भरी मांग में रोली।
गलियन गलियन फिरै झमकती लयें सखियन की टोली।
कुंज कली सी लसै नवेली आई खेलबे होली॥

या फिर "आ गए मामुलिया के छैला भर भर अपनी पिचकें।
मामुलिया हो गई मामुलिया राग रंग सें सिचकें।

सोना है सुहागा नहीं—

मामुलिया के इस अंक में कमी है, तो मात्रकला-सज्जा की। पत्रिका के आर्थिक पक्ष को देखकर भले ही उपेक्षा की जाय, लेकिन यदि फागों के साथ कुछ चित्र भी दिए जा सकते तो मजा बढ़ जाता, सोने में सुहागा हो जाता। फिर भी अपनी रचनाधर्मिता के लिए मामुलिया को बुन्देली के लक्ष लक्ष प्रेमी सराहेंगे—अपनाएंगे, तभी इसे जीवन मिलेगा और बुन्देली को उसका गौरव।

—कुमार संजीव, ५७७ कोतवाली वार्ड, जबलपुर

अपने मन मानिक के लानें
सुगर जौहरी चानें

● स्वागत का आलम : संघर्षों के पांवड़े

एक साल बीत गया। मामुलिया का हर जगह हर हाथ में स्वागत। हर आंख में ललकभरी कौंध। चाहे वह बुन्देली या मालवी हो, चाहे किसी जनपद की। हिन्दी और उर्दू की भी। सबने मामुलिया को अपनाया, दुलारा और यह स्वागत का आलम उसकी अपनी अमूल्य सौगात है, जो कभी नहीं भुलाई जा सकती। पर उसने संघर्षों के पांवड़े हमेशा बिछे देखे हैं और उन्हीं पर पैर बढ़ाते हुए वह चल रही है। एक तो है आर्थिक, जो बहुत बड़ा है और जिसे पार करना बहुत जरूरी है। दूसरा है हर जगह की साहित्यिक दलबंदी का, जिसे अनदेखा नहीं किया जा सकता। और भी बहुतेरे हैं, पर इन दोनों को लांघना पहला काम है और यह तभी संभव है, जब हम सब 'मामुलिया' को एक साथ उठायें। सबको 'मामुलिया' का न्यौता।

● कुछ अहम सवाल : मामुलिया पर गोष्ठियाँ

जबलपुर, टीकमगढ़, दमोह, सागर आदि नगरों में जो गोष्ठियाँ या चर्चाएँ हुई हैं, उनसे ऐसा लगता है कि 'मामुलिया' ने एक 'सोच' कायम किया है। जबलपुर की गोष्ठी में कुछ सवाल भी उठे हैं, जो निश्चित ही दृढ़ आस्था के अंकुए से हैं। एक सवाल यह था कि इस समय बुन्देली संस्कृति, साहित्य और कला पर बात करना क्या प्रान्तीयता जैसी आंचलिकता फैलाना नहीं है। इस प्रश्न का उत्तर साफ है कि बुन्देली संस्कृति और साहित्य भारतीय संस्कृति, कला और साहित्य का अंग है और उसकी खोज तथा समृद्धि से भारतीय संस्कृति ही सशक्त एवं समृद्धि होगी। दूसरे, भारतीय संस्कृति और साहित्य का इतिहास तभी लिखा जा सकता है, जबकि उसके हर जनपद की संस्कृति और साहित्य पूरी तरह से उजागर हो। दूसरा प्रश्न था बुन्देली भाषा के सम्बन्ध में। लगभग ऐसा ही। बुन्देली लोकभाषा की प्रासांगिकता पर। उसका जवाब भी वही है कि बुन्देली भाषा का विकास और उत्कर्ष राष्ट्रभाषा को और आगे बढ़ाने तथा समर्थ करने के लिए है। गोष्ठी में भी कहा गया था कि हिन्दी साहित्य में जब भी नूतन विकास हुआ है, लोकभाषा के शब्दों और लोकभावों को अपनाकर। इस दृष्टि से लोकभाषा हिन्दी का भंडार और भरेगी, कहीं भी बाधा नहीं देगी। मामुलिया और अकादमी शुरू से ही इसी आधार को पकड़कर चल रही है और चलती रहेगी।

सबसे महत्वपूर्ण बात तो यह है कि मामुलिया ने एक साल के भीतर एक नया 'सोच' पैदा किया है। सभी ने यह महसूस किया है कि इस अंचल की संस्कृति, कला और साहित्य को प्रकाश में लाना है और यह संकल्प तभी पूरा हो सकता है, जब हम सब एकजुट होकर प्रयास करें।

● आल्हा, राई और स्वांग : राहतगढ़ शिविर की मांग

आदिवासी लोककला परिषद के राहतगढ़ शिविर ने यह तै कर दिया है कि बुन्देली अंचल के तीन प्रमुख आभूषण हैं—आल्हा, राई और स्वांग। और तीनों पर खोजपूर्ण कार्य नहीं हुआ है। आल्हा के रूप-निर्धारण और उसकी गायकी पर कुछ काम हुआ है, जो शीघ्र ही प्रकाश में आएगा। बुन्देली लोक-नृत्य राई और बुन्देली स्वांग बुन्देली धरती की पहचान हैं, जिसे अच्छी तरह से स्थापित करना है। शोधार्थियों एवं विद्वानों को यह महत् कार्य करने का संकल्प करना है। शिविर में चर्चा के दौरान यह लगभग मान लिया गया है कि बुन्देली स्वांग विशुद्ध स्वांग का प्रतिनिधित्व करता है। ब्रजी, राजस्थानी, काश्मीरी, हरियाणवी आदि जनपदों के स्वांगों से तुलना करने पर यह मान्यता प्रतिष्ठित हो सकी है। लेकिन अभी हमें काफी प्रयास करना है और अकादमी सभी विद्वानों को आमंत्रित करती है।

● नये वर्ष का प्रवेश : कुछ अपनी बातें

मामुलिया का यह अंक दूसरे वर्ष की पहली भेंट है और गत वर्ष के दौरान पाठकों की कुछ शिकायतें रही हैं, उनसे कुछ कहना आपस की ही बातें हैं। कभी-कभी कोई अंक विलम्ब से आता है और पाठकों को प्रतीक्षा करनी पड़ती है। प्रतीक्षा का यह उलाहना मामुलिया के प्रति उत्सुकतासे लगाव का द्योतक है। वह निरन्तर बना रहे और पत्रिका बराबर निकलती रहे, यही हमारा लक्ष्य है। लेकिन कारणवश विलम्ब के लिए हमें क्षमा भी करते रहें। जहाँ पत्रिका के स्तम्भों का प्रश्न है, जो सामग्री जब आ जाती है, हम कोताही नहीं करते। विद्वान लेखकों से निवेदन है कि वे हमें अपना अमूल्य सहयोग प्रदान करें। बहरहाल जो कमियां हैं, वे सब हमारी हैं और जो उपलब्धियां हैं, वे सब आपकी हैं।

—सम्पादक

महाराज छत्रसाल की स्मृति में

छत्रसाल की इतिहास-लेखन की परम्परा में एक अज्ञात युद्ध-काव्य

अब्दुल समद की लड़ाई

● हरिकेश कवि

[छत्रसाल के ऐतिहासिक चरित्र पर आधारित छत्रप्रकास, छत्रसाल विजय, छत्रसाल विरुदावली आदि कुछ ग्रंथों का विवरण साहित्येतिहास में उपलब्ध है, पर 'अब्दुल समद की लड़ाई', 'छत्र साल कौ कटक' आदि अज्ञात ग्रंथों का उल्लेख तक किसी इतिहास-ग्रंथ में नहीं मिलता। मैंने मध्यप्रदेश संदेश, २५ अगस्त, १९७९, पृ० २३ पर अपने लेख में उपर्युक्त युद्धकाव्य का परिचय दिया था। कृति की आदि और अंत की पुष्पिकाओं में रचना का नाम 'अब्दुल समद की लड़ाई' दिया गया है, जिससे यह युद्धकाव्य प्रतीत होता है। इसके अंत की दो पंक्तियों में बहादुरशाह द्वारा छत्रसाल को मनसब दिये जाने का उल्लेख है, जिससे इसका रचना-काल १७०८ ई० के बाद का ठहरता है। लेकिन इसमें १७१० ई० के लोहागढ़ युद्ध का कोई संकेत नहीं है, अतएव इस कृति की रचना १७०९ ई० के लगभग हुई होगी।

कृति की किसी भी पंक्ति में रचयिता का नाम या छाप नहीं मिलती, परन्तु प्रारम्भ की पुष्पिका में 'हरिकेशकृत' से यह 'द्विज हरिकेश' की रचना सिद्ध होती है। हरिकेश सेंउढ़ा निवासी थे और इस रचना से वे परना-पुरन्दर (पन्ना के इन्द्र) छत्रसाल के आश्रित कवि मालुम पड़ते हैं। उनकी दूसरी रचना—'ब्रजलीला' में महाराज छत्र साल और उनके पुत्र हृदेसाहि दोनों की प्रशस्ति है। तीसरी रचना—'जगतराज की दिग्विजय' से प्रमाणित है कि कवि जैतपुर नरेश जगतराज के आश्रित था। कवि ने अपनी दिग्विजय में कृति के अद्भुत सम्मान की चर्चा की है—'सुखपाल पर आरुढ़ कीनी दिग्विजय की पुस्तकी....', जिससे स्पष्ट है कि महाराज जगतराज ने ग्रंथ को सुखपाल पर आरूढ़ कर एक विशेष सम्मान की परम्परा कायम की थी।

इतिहास की दृष्टि से इस लघु खण्डकाव्य में दो नवीनताएँ हैं। लाल कवि के 'छत्र प्रकास' में छत्र साल और अब्दुल समद के युद्ध का वर्णन किया गया है, किन्तु उसमें युद्ध स्थल का पता नहीं चलता। 'भूषण' कवि ने अपने एक छंद में 'खेत बेतवै' लिखकर बेतवा नदी के तट पर होना बताया है, जबकि हरिकेश की एक पंक्ति—'चलि चंड बल बड़बंड दल चढ़ि बेतवै चौरें अड़यो।' से प्रमाणित है कि यह युद्ध बेतवा के उस पार बसे चौरा ग्राम में लड़ा गया था। दूसरी विशेष बात यह है कि इस कृति में यह घटना बहलोल खाँ से युद्ध के बाद की बतायी गयी है, जबकि इतिहासकारों ने इसे उससे पहले की माना है।

साहित्यिक दृष्टि से इसका महत्व और भी अधिक है। इसमें छत्रप्रकास की तरह इतिहासकार की तटस्थता, सीधी-सादी कथा योजना, पात्रों की व्यक्तित्व की सजीवता और युद्धवीर की ओजमयता है। इतना अन्तर अवश्य है कि छत्रप्रकास में छत्रसाल का जन्म से लेकर १७१० ई० तक का इतिहास है, लेकिन इस कृति में केवल एक युद्ध का वर्णन है। फिर भी काव्य सौष्ठव की दृष्टि से यह रचना अधिक सरस और चित्रमय है। सबसे महत्वपूर्ण बात तो यह है कि बुन्देलखण्ड की सुदीर्घ युद्धकाव्य परम्परा में यह कृति 'लड़ाई' काव्य-विधा का प्रतिनिधित्व करती है। वस्तुत युद्ध, समर, लड़ाई, कटक, समौ आदि नामों से लिखे युद्ध काव्यों का अध्ययन कर उनके बीच की भिन्नता सामने रखकर उनकी अलग पहचान अंकित करने की आवश्यकता है।

यहाँ कृति का प्रारम्भिक अंश दिया जा रहा है, जिसे मैंने ही सम्पादित किया है। आवश्यक टिप्पणियाँ भी दी गयी हैं।—डा० नर्मदा प्रसाद गुप्त]

अथ हरिकेशकृत अब्दुल समद की लड़ाई लिख्यते।

दोहा—गणपति जग वंदन विदित, अग्रगन्य दिन दानि।
देहु सुमति छत्रसाल कौ, जस कछु कहौं बखान ॥१॥
राघव दसरथ मंदिरहि, नंद सदन जदुबीर।
चंपत घर जाग्यो छता, धर्म-धुरंधर धीर ॥२॥
जो जैसें समुझहि फलहि, ताकों तैसो रूप।
पूरन बल पूरन कलन,[1] प्रगट्यो छत्ता भूप ॥३॥

छन्द हरिगीतिका

प्रगट्यो छत्ता छितिपाल छत्री छत्र छत्तिस कुरी कौ।
परमा[2] पुरंदर बिदित चंद्र अमंद मायापुरी[3] कौ ॥

हिंदवान[४] लज्जा उपरना[५] छरना[६] सु दुर्जन सतन[७] को।
संगर अपरना-कंत[८] करुनासिधु सरनागतन को॥

गो-द्विजन-पालन वर अतालिक[९] वीर उद्भट दलन को।
अति गढ़ उसालक[१०] सबल सालक[११] बजत घालक खलन को॥

दिग-बाम-चित-चोरन महा मोरन मरद्द अमोर[१२] को।
कुल बंस वहोरन बिजय जोरन जोर जोरन रोर को॥

दिन ऊलहत[१३] नव सूर पुन्यनि अतुल बल बिक्रम बढ़्यो।
पंजा[१४] इतै पै जासु माथें जीव साहिब को चढ़्यो॥

लख-लख पुरान कुरान मत सबके हियें भ्रम च्वै रहो।
भैंचक[१५] दुराहे के बटोही लौ जगत जड़ ह्वै रहो॥

..ह मिल्यो जो जिहि साहिबै लख तारतम्य दया कली।
बजि मिली ठीक नजीक[१६] जाकों ब्रह्म वर ग्रह की गली॥

वज कियो आदर बिमल छत्ता ब्रह्म सृष्टि समाज को।
तहँ रीझ राज[१७] दियो बुंदेलहि तिलक अघटित राज को॥

राजाधिराज भयो छता कबिराज भट्ट निहाल भे।
तजि मनी पंचम के सकल महिपाल हुकुम हमाल[१८] भे॥

त्यों चलो फैल अखंड पुन्य प्रताप चंपतलाल को।
उठि चलो कुल यह खलक तें खल दखल दल दहचाल[१९] को॥

बहु भाँति और कहों कहा महिमा महेबादार की।
झलकी कला सब चलन में फल की तहाँ अवतार की॥

अवतार में जु कमी कहा देखहु रसाल भली भली।
जगनाथ[२०] की है सासना[२१] आवहि उड़ीसा तें चली॥

अवतार काल सँहारनो पर भूमि लोढ़ा द्वार[२२] भो।
बेताड बजि कलिजुग जगावन वर जवन परिवार भो॥

आवन लगे त्यों छता पर जे तिमिर कुल अवतंस के।
आये सुने जिम कान्ह पर अगवान क्रोधी कंस के॥

आयो पहिल महमंद हासिम[२३] खसम हातिम हसम[२४] को।
मारो रपेट जु मर्द पंचम रूप धर जनु रसम को॥

त्योंही रपेट सिरोंज[२५] की आनंद रात धरा धरी।
इकहा लई छुड़ाय कर उमड़ांन खड्ग झरा झरी॥

फिर मढ़ो रन रोजा[२६] प्रती खोजा सु खालिक[२७] आय कें।
गुरको तुरत बुंदेल के भाले निवाले[२८] खाय कें।

आयो तुरनबे[२९] कैद उन वर सैद मनवर[३०] चाउ दै।
मारो मरद्द उमंड कें अंगद सुपनही पाँउ दै॥

तिहि बीच तेख[३१] असेप अनवर सेख[३२] उमड़त आयगो।
घन घरिक[३३] घुमड़ि मचाय कटक कटाय करि लुटवायगो॥

करि करन विजय अनीर[३४] को बिचलाय रनदूलह[३५] बली।
हत खोय तहँ लड़ि खान की सेना सुदरदी[३६] की दली॥

लूटी न खूटी[३७] फौज फिर दल्लेलखान[३८] अडोल की।
रन वहवही गहगही गंजी[३९] गोल वर बहलोल[४०] की॥

को गनै अगनित ससक म्रग भुमियान कों, संहार कें।
है सही सिंहा छता कै गजमियन हीकों मार कें॥

मारे घने उमराव सुन चित चकित चकता सौ रहो।
सूबा अमीरन के हिये उद्दत अधीरज हो रहो॥

तहँ छनौछन छीजत पसीजत निरख तन अवरंग[४१] को।
बोलो समद[४२] सब तन चितै जिकरो[४३] सु जालिम जंग को॥

टिप्पणियां :—

१. कलाएँ, २. पन्ना, छत्रसाल की राजधानी। ३. इन्द्रपुरी, ४. हिन्दुओं की, हिन्दुस्थान की। ५. उत्तरीय, दुपट्टा। ६. नष्ट करने वाला, ७. सैकड़ों, अनेक। ८. शिव (अपर्णा-पार्वती के कंत)। ९. तुर्की शब्द अतालीक से निर्मित, शिक्षक या गुरु। १०. उसालने या उखाड़ने वाला। ११. सालने या चुभने वाला। १२. न मुड़ने या झुकने वाला। १३. उलहना (फूटना या निकलना) से निर्मित। १४. उँगलियों के सहित हथेली का अर्धसंपुट(फारसी पंजः),प्रणामी धर्म में आशीर्वाद प्रतीक। १५. भौचक या भौचक्का से निर्मित, हतबुद्धि, हैरान,

हुक्का-बक्का । १६. समीप, पास । १७. प्रणामी धर्म में ब्रह्म का पर्याय । १८. अरबी शब्द हम्माल से निर्मित, बोझ ढोने वाला । १९ बवंडर । २०. उड़ीसा के स्वामी जगन्नाथ । २१. संस्कृत शासन से नियन्त्रण, हुकूमत । देशज बुंदेली, मान्यता । २२ चौपट या नष्ट किया हुआ । २३. सिरोंज के फौजदार मुहम्मद हाशि । (महाराजा छत्रसाल बुंदेला, डा० भगवान दास गुप्त, पृ० ४१-४२, ४७ । बुंदेलखण्ड का संक्षिप्त इतिहास, गोरेलाल तिवारी, पृ० १८३ ।) २४. अरबी हशम से, नौकर-चाकर । २५. विदिशा जिले का एक नगर, मुगल शासन-काल में बड़ा नगर । २६. रन=युद्ध+रोजा=(रोज़:) मुसलमानों के व्रत, उपवास । २७. धामोनी (सागर से २४ मील उत्तर) का फौजदार (महाराजा छत्रसाल बुंदेला, पृ० ४२, ४३, ४५) । २८. फारसी निवाल: से, ग्रास, कौर । २९. तोड़ना, तुड़ाने । ३०. सैदा=सैयद बहादुर (महाराजा छत्रसाल बुंदेला, पृ० ४४) । ग्वालियर के सूबेदार के अधीन (बुंदेलखण्ड का संक्षिप्त इतिहास पृ० १८६) मनवर=राठ और महोबा का फौजदार मुनव्वर खां (महाराजा छत्रसाल बुंदेला, पृ० ४७) । ३१. तेखना=रुष्ट, नाराज होना क्रिया से । ३२. शाही पदाधिकारी शेख अनवर (महाराजा छत्रसाल बुन्देला, पृ० ५१ । छत्रप्रकाश, १७ वां प्रकाश) । ३३. घड़ी भर के लिए । ३४. संभवतः एक नगर का नाम । ३५. सिरोंज के आप-पास के परगनों के फौजदार रण-दूलह खां (महाराजा छत्रसाल बुंदेला, पृ० ५१ । बुंदेल खण्ड का संक्षिप्त इति०, पृ० १८८ से १९१) ३६. धामोनी के फौजदार सदरुद्दीन खां (महाराजा छत्रसाल बुंदेला, पृ० ५२ । बुंदेल खण्ड का संक्षिप्त इति० पृ० १९७ से २००, छत्रप्रकास में 'सुतरदीन' लिखा है । ३७. बुंदेली शब्द खूटना=टोकना का भूतकाल । ३८. सूबेदार दलेल खां (बुंदेलखण्ड का संक्षिप्त इति०, पृ० २०३) ३९. ढ़ेर राशि (संभवतः फारसी शब्द गंज से) अथवा गंजन या नष्ट की हुई । ४० मुगल सेनापति बहलोल खां (महाराजा छत्रसाल बुंदेला, पृ० ५३ । छत्रप्रकाश, २१ वां प्रकाश । धामोनी के सरदार बहलूल खां, बुंदेल, खण्ड का संक्षिप्त इति०, पृ० २०३) ४१. मुगल बादशाह औरंगजेब । ४२. अब्दुल समद (दिल्ली का सूबेदार, बुंदेल खण्ड का संक्षिप्त इति०, पृ० २०१) अब्दुल समद (भेलसा का फौजदार, महाराजा छत्रलाल बुन्देला, पृ० ५३) ४३. अरबी जिक्र से, चर्चा ।

संस्मरण

बे रामकुमार पहलवान कितै गये ?

● डा० रामकुमार वर्मा

[महाकबी रामकुमार वर्मा को जो संस्मरण अुर ऊकी घटना ईसें धरोअल बन गयी है कै ईमें पहलवानी सें जुड़ों कबिता कौ औनो खोजो जा सकत । बुंदेली में कबी के अपने मन की खोज कजात कछू नई किरन उगावै ।—सम्पादक]

जब हम छोटे हते-जेई सात-आठ बरस के—तो जहां हमाये पिता जी की बदली होत ती–उतई के स्कूल में नाम लिख जात हतो । जब वे वेमेतरा (म०प्र०) में तैंसीलदार हते तो हम उतै के स्कूल में चौथी किलास में पढ़ रये ते । नानपंचमी के दिना हमाये स्कूल में कुस्ती के दंगल कौ इंतजाम करो जात तो और उमर के लिहाज सें 'जोड़ी' के लड़का छाँटे जातते । हम छोटे हते तो एक छोटी जोड़ी में नॉव लिखो गओ ।

जब कुस्ती भई तो हमनें अपनी जोड़ी के लड़का के पांव में ऐसो पेंच उड़ाओ कै वो चारों खानें चित्त हो गओ । मास्टर जू नें हमाओ हांत उठा कें हमाई जीत कौ ऐलान करो । हम अखाड़े के एक कोने में ठांड़े हो गये ।

तवई एक बड़ी जोड़ी अखाड़े में आई । थोड़ी देर में एक लड़का नें दूसरे की टाँग पकड़ कें वाय चित्त कर दओ और ताल ठोंक कें अखाड़े में घूमन लगो । बाकी सेखी हमसें नै देखी गयी और हमनें हांत बढ़ाकें कही कै हमसें लड़ो । तमासो देखनवारे ताज्जुब करन लगे कै जे लहुरे बीर काये पटकनी खाओ चाहत हैं ।

कुस्ती शुद्ध भई और थोड़ी देर में हमनें धोबी-पाट सें ऊ बड़े लड़का खों ऐसी पटकनी दई कै बो म्हों बाँ कें रै गओ ।

तबसें हमाई हिम्मत इत्ती बढ़ी कै रोज अखाड़े में कुस्ती लड़न जान लगे । कछू दिनन में हमारो बड़ो नांव हो गओ मनों फिर ऊँची किलास में आकें

साहित्य कौ ऐसो नसा चढ़ो कै कुस्ती-मुस्ती सब भूल गये । अब साहित्य में नाम होन लगो । मनों पुराने लोगन नें जिननें हमारी कुस्ती देखी हती, बे हमें देख के कहन लगे—वे रामकुमार पहलवान किते गये ?

—'साकेत', ४ प्रयाग स्ट्रीट, इलाहाबाद–२

बुन्देली लघुकथा—

उगलत-लीलत

उदनारधिया ड्याड़ें दै दै रोई । जित्ते जात बिरादरी के हते, सो वे जुरमिल के ऊके आदमी खों फूंक-ताप के आ गए । जौन दिना तेरईं हती, ऊके पैले दिना फिन सबेरें जुरे उर तेरईं करवे के लानें रधिया सें कई—कै तेरईं करबे खों खरचा देओ । रधिया ने कई कै मोरे ऐंगरें कछू नैयां में का दै दऊं । पंच नें उखों खूबई खारी खोटों सुनाईं उर कई के ऐंसी औरत तें अपने मनंख खों नरक भुगता है का ? अरे बामन उर जात बिरादरी के मनखंन खों खबा-पिया देहै, तो तोरो आदमी उतै सरग सें तोखों असीस है, तोय बिलकुलई भायं नैयां ?

रधिया नें कई तुमई बताब मालक मैं का करों चार मइना सें ई कुठलिया को किराव नईं दओ आय उर घर में माटी के घैलन सें ज्यादा का दिखात । परों में मोय कहूं से एक ठईं दानों मों में डारवे नईं मिलो । मैं का करों । पंच बोले—तें कछु कर ऊसें हमें का कन्नें । हम तो जात बिरादरी के आयं ईसें तोय तो हम औरव खों खुआवनें प्यावनें पर है । काल तेरईं को दिना है, सो बन्दोबस्त करकें धरिये । इत्ती कै कें सबरे चले गये ।

रधिया खों रात कें भूखन के मारे चैन नें पर रई हती । ऊखों जैसई भीत तलफना परी उर जब ऊखों रहाई नें परी, सो जाकें कुआ में कूंद परी । कुआ के ऐंगर जोंको घर हतो ऊखों—ऐंरो मिलो कै कुआ में कछू गिरो है । ऊ झट्ट सें लालटेंट लैकें आओ । इतै रधिया कुआ में गिरी, लौ पै पानी कर रैबे से बा डूब नें सकी । ऊपर सें नेंचें गिरे हांत पांव उर टूट गए, सो रोउन लगी ती । तनक दार में मुहल्ला परोस के जुर गए कुटवार सोई आ गओ । ऊनें सोसी, कजात मर गई तो लैबे दैबे पर है, सो बो चलो गओ पुलस थानें । उतै जाकें ऊनें रपोट लिखाई, पुलस बारे आए और रधिया खों लै गए, मुकद्मा चलो, जज्ज में प्रान दैबे के जुरम में रधिया खों जिहल भिजवा दओ ।

—गुप्तेश्वर द्वारकागुप्त जबलपुर ।

बुन्देली लोकगीतों में निहित हिन्दू संस्कार : अर्थमूलक अध्ययन

● डॉ० त्रिभुवननाथ शुक्ल

१.० प्रस्तुत निबन्ध का उद्देश्य बुन्देलखण्ड में प्रचलित हिन्दू संस्कारों का अर्थपरक विश्लेषण करना है । बुन्देली लोकगीतों में हिन्दू संस्कारों के पारम्परिक स्वरूप के दर्शन होते हैं । अखण्ड भारतीय परम्परा से एक भूभाग अथवा अंचल किस प्रकार अनुप्राणित हैं —इसकी स्पष्ट झलक इन गीतों में दिखायी पड़ती हैं ।

यहाँ के सामाजिक जीवन में प्रचलित संस्कारों के विवेचन के पूर्व संस्कार स्वरूप एवं महत्व को समुद्घाटित करना आवश्यक होगा । अता यहाँ विवेचन के क्रम में–हिन्दू संस्कार : स्वरूप, विश्लेपण एवं महत्व, बुन्देलखण्ड मे व्यवहृत हिन्दू संस्कार—जन्म, अन्नप्राशन, कर्णवेध, मुण्डन, यज्ञोपवीत, विवाह और द्विरागमन का क्रमिक विवेचन किया जा रहा है ।

१.१ हिन्दू संस्कार : स्वरूप, विश्लेपण एवं महत्व

यहाँ संस्कार स्वरूप से तात्पर्य संस्कार शब्द की अर्थव्याप्ति (विभिन्न सन्दर्भों में) एवं उसके मान्य प्रकारों के सामान्य विशलेपण से है । आक्सफोर्ड डिक्शनरी में संस्कार के लिए तीन शब्दों–Cemoney, Rit और Sacrament शब्द का प्रयोग हुआ है । इसी प्रकार संस्कृत के वाचस्पत्य बृहदाभिधान भाग-५ पृष्ठ ५१७७ पर इसका अर्थ 'विधिवत शुद्धि—क्रिया, दिया गया है । कालिदास ने भी कुमार सम्भव (१।२८) में 'शुद्धि' अर्थ में (संस्कारवत्येव गिरा-मनीपी तया स पूतश्च विभूपितश्च) रघुवंश (३।३५) में 'प्रशिक्षण' के अर्थ में (निसर्ग संस्कार विनीत इत्यासौ नृपेण चक्रे युवराज शब्दभाक्) रघुवंश के ही (३।१८) में 'संस्करण'/'परिष्करण' के अर्थ में (प्रयुक्त संस्कार इवाधिक बभौ) एवं इसी के (१।२०) में अभिपेक / विचार / भावना / धारणा / कार्य का परिणाम / क्रिया की विशेपता के अर्थ में (फलानुभेया: प्रारम्भा: संस्कारा: प्राक्तनाइव) अभिज्ञानशाकुन्तलम् (७।३३) में 'शोभा' / 'आभूपण' के अर्थ में (स्वभाव सुन्दरं वस्तु न संकारमपेक्षते) मनुस्मृति (२।२६) में—शुद्ध क्रिया / धार्मिक विधि / विधान के अर्थ में (कार्य: शरीरा: संस्कार: पावन: प्रेत्यचेह च) हितोपदेश (१।१८) में 'प्रभाव' / स्वरूप | स्वभाव / क्रिया एवं छाप के अर्थ में (यन्नेव भाजने लग्न: संस्कारो नान्यथा भवेत) प्रयुक्त हैं । संस्कार शब्द

के उपर्युक्त अर्थ प्रयोग अन्ततः एक ही केन्द्रीय अर्थ—परिष्कार / परिमार्जन के अभिव्यंजक हैं। इस प्रकार संस्कार शब्द का स्पष्टार्थ वह मांगलिक अनुष्ठान हैं जो आर्यजनों द्वारा विधिवत् सम्पादित एवं लोक में प्रचारित हैं। इन संस्कारों का सबसे बड़ा लाभ यह है कि इनसे संस्कारित व्यक्ति के व्यक्तित्व का विकास होता है। इससे वह अपने सामाजिक जीवन में पूर्णता को प्राप्त करता है। उसका आभ्यान्तर एवं बाह्य परिशुद्ध हो उठता है। इस कथन की पुष्टि उन सभी संस्कारों के विधि-विधान से हो जाती है, जो व्यक्ति के विकास के निमित किये जाते हैं। जैसा कि शबर ने संस्कार की व्याख्या करते हुए लिखा है—"संस्कारों नाम सभवति यस्मिज्जनते पदार्थो भवति योग्य: कस्यचिदर्थस्य" अर्थात संस्कार वह है जिसके होने से कोई पदार्थ या व्यक्ति किसी कार्य के लिए योग्य हो जाता है।[1] तन्त्रवार्तिककार के अनुसार—'योग्यतां चादधानाः क्रियाः संस्कारा इत्युच्यते' अर्थात् संस्कार वे क्रियाएँ तथा रीतियां हैं जो योग्यता प्रदान करती हैं।[2] इन संस्कारों की अधिकतम चालीस और न्यूनतम सोलह प्रकार बताये गये हैं। इस सन्दर्भ में गौतम, अंगिरा और व्यास का उल्लेख मिलता है। गौतम ने चालीस, अंगिरा ने पच्चीस और व्यास ने सोलह संस्कारों का उल्लेख किया है[3] यहाँ केवल उन्हीं संस्कारों को विवेचन किया जा रहा है, जो बुन्देलखण्ड में सर्वमान्य एवं प्रचलित हैं।

१.२ बुन्देलखण्ड मे प्रचलित संस्कार—

१.२.१. जन्म संस्कार

वैदिक विधान में जो मंत्रों का शिवात्मक स्वरूप एवं महत्व है, वही सामाजिक आचरण एवं परम्परा में लोकगीतों का भी। इसी भावना से अभिभूत होकर समाज परम्पराओं का आदर करता है, उसे अपने लिए अनिवार्य एवं वरेण्यमानकर अंगीकार करता है। इसी श्रृङ्खला में जन्म संस्कार के अन्तर्गत सोहर का विधान है, इसको दसोटन भी कहते हैं। यहाँ दोनों को स्पष्ट किया जा रहा है।

सोहर—'सोहर' शब्द का एक संस्कार गीत के अर्थ में उसी उपभाषा क्षेत्रों में प्रयोग होता है। वैसे इसका मूल शब्द रूप सुघड़ है, जो अपने विकास के अधोक्रम में सुघड़, सुहर और सोहर हो गया है। इस प्रकार यह सुघड़—सुन्दर रूप में गढ़ा अथवा रचा हुआ अर्थात् मंगल की भावना से गाया हुआ गीत है। इसका दूसरा नाम दसोटन भी हैं। यह लगातार दस दिन तक गाया जाता है, अतः इसे दसोटन कहा गया है। पूरे दसों दिन

चूंकि प्रायः उन्हीं-उन्हीं गीतों की पुनरावृत्ति होती रहती हैं। अतः ओटन (आवृत्ति) के साथ जोड़कर (दस+ओटन) दसोटन कहा गया है। वैसे ओटन क्रिया (शब्द) का प्रयोग किसी एक ही कथ्य अथवा क्रिया के कहने अथवा करने के अर्थ में होता है। रेघना इसी का पर्याय है। 'ओटना' और 'रेघना' दोनों क्षेत्रीय अथवा बोलीगत शब्द-प्रयोग हैं। सोहर शब्द की व्युत्पत्यर्थक एवं काल क्रमिक व्याख्या के अनन्तर उसके उन गीतों के विवेचन का अनुक्रम आता है जो अखण्ड भारतीय सांस्कृतिक परम्परा के मुकुर हैं, जिसमें बुन्देलखण्डीय जन-जीवन, संस्कार एवं परम्पराएँ अपना स्वरूप सवांरती हुयी दृष्टिगत होती हैं। उक्त तथ्य के समुदघाटन हेतु आधार रूप में यहाँ चार गीतों को लिया जा रहा है—

गीत—१ कैसी मचल रई दाई, अवध में कैसी मचल रई दाई।
सुरंग चुनरी कौशिल्या लयें ठाड़ी बईन लेवे दाई।
सोने को हार केकई लयें ठाँड़ी, कूलों मरोर गई दाई।
सोने की सिलरी सुमिया लयँ ठाँड़ी, मुखई न बोले दाई।
(बुन्देलखण्डी लोक गीत, पृष्ठ ६३)

इस गीत में परम्परा बोध का संकेत है और इस परम्परा बोध के प्रमुख प्रतिनिधि हैं—राम और उनके परिजन, पुरजन आदि। इसमें नेग की चर्चा के द्वारा यह संकेतित है कि इन अवसरों पर सम्बन्धित प्रजाजनों को रूठने का अधिकार है। इस अधिकार की मांग सामाजिक सुव्यवस्था का संकेत देती हैं।

गीत—२ सुहाये नंद के घर आज
बधाये नंद के घर आज
टेरो-टेरो सुगर नइनियां
नगर बुलउवा देव ।। बधाये०
(हीरादेवी चतुर्वेदी, बुन्देल खण्डी लोक गीत, पृ० ३३)

इस गीत में व्यापक युग बोध, पारम्परिक एवं जनसमादृत मान्यताओं और समृद्ध सांस्कृतिक परम्परा का संकेत मिलता है। नवजात शिशु को कृष्ण और पिता को राजानंद के समान मानकर बधाव के समय बधाव के गीत गाये जाते हैं। इसमें टेरो-टेरो नईनियां से सामाजिक सद्भाव तथा आकस्मिक आह्लाद का बोध होता है। अंतिम पंक्ति नगर बुलउवा में परस्पर सौमनस्य का भाव है। ऐसे अवसरों पर लोग अपनी अपनी सद्भावनाएं व्यक्त करने हेतु उपस्थित होते हैं—विशेषतः महिलाएँ। यह परम्परा अपने क्षेत्रीय सीमा

से पर्याप्त ऊपर उठकर समग्र भारत के सांस्कृतिक स्वरूप की अभिव्यक्ति करती हूं।

गीत—३ राजा दशरथ के पुत्र भये हैं रघुकुल जोत उजयार दई बाती।
रानी कौशिल्या की कूंख जुड़ानी—
सब सखियों की शीतल भई छाती।

(बुन्देलखण्डी लोक गीत, पृ० ५३)

इस गीत में नवजात शिशु को दैवी आत्माओं के साथ जोड़ कर उसमें तदुवत पराक्रम गुण एवं ऐश्वर्य की कामना का भाव है। जैसा कि एक गीत में लवकुश के जन्म के लिए रोचना लाये हुए नापित की बात कह कर परम्परा की पुष्टि की गयी है। वह गीत ऐसा है—

गीत—४ गाँव के गोइड़े[४] एक तलवा, ता राम दातुन करें
कहना के तुम भाई नउवा कहा चलि आये हो
बनमा के हम आहेन नउवा, अजोध्या चलि आयेन हो
रानी सीता के भे नंदलाल, रोच[५] लइके आयेन हो।

इस गीत को पढ़ने के बाद एक बिम्ब बनता है—जिसे शास्त्रीय शब्दावली में दृष्टिपरक बिम्ब कहा जा सकता है। इस गीत का रचना-विधान पूर्ण एवं सफल है। कैसी उदात्त पृष्ठ भूमि हैं—गाँव के समीप में तालाब का होना, उसमें राम का दातून करना, बन से रोचना लेकर नाई का आना, राम से प्रश्नोत्तर होना—इन तमाम प्रसंगों का संश्लिष्ट रूप एक सशक्त बिम्ब को निर्मिति करता है। प्रश्नोत्तर शैली में उपनिबद्ध यह गीत कई दृष्टियों से बहुत महत्वपूर्ण हैं।

१.२.२. अन्न प्राशन

अन्न का कोशीय अर्थ—भोजन/भात/कच्चा धान्य, चना, जौ आदि है और प्राशन का—खाना। इस प्रकार अन्न प्राशन का अर्थ हुआ भोजन करना। सोलह संस्कारों में यह विशेष संस्कार है। इसमें नवजात शिशु को प्रथम बार अन्न खिलाने की क्रिया का विधिवत शुभारंभ किया जाता है। इसे पसनी/पासनी एवं चटावन भी कहते हैं। चटावन इसलिए कहा जाता है कि नवजात शिशु की बुआ चावल तोड़कर/पीसकर अथवा कुचलकर शिशु को चटाती है। बुन्देलखण्ड में यह संस्कार शिशु-जन्म के छठवें महीने सम्पन्न किया जाता है। यह समय मनुस्मृति के श्लोक २।३४ में इसका उल्लेख हुआ है—

चतुर्थे मासि कर्त्तव्यं शशोर्निष्क्रमण गृहात्।
षष्ठेहुन्नं प्राशनं मासि यद्वेष्टं मंगलं कुले॥

मनुस्मृति के अनुसार—कुल के कल्याण के लिए इस संसार को करना चाहिए बुन्देलखण्ड में यह संस्कार आज भी प्रचलित हैं। अन्न प्राशन के दिन बालक को यथाशक्य आभूषणों से सुसज्जित किया जाता है। इसका गीत इस प्रकार है—

अबै मोरें को सुनरा कैं जैहे,
काहे के चार चूरा छिगुनियाँ, काहे की करघुनियाँ
सुन्ने की चार छूरा छिगुनियाँ, रूपे की करघुनियाँ
काहे की वा टोपी झंगुलिया कैसी लगी फुँदरियाँ[६]
हरे कसब[७] की टोपी झंगुलिया सोरा सोलगी फुँदरियाँ

(बुन्देलखण्डी लोक गीत, पृष्ठ ५४)

प्रश्नोत्तर शैली के इस गीत में जहाँ एक ओर बस्त्रों एवं आभूषणों के समयानुसार उपयोग का शोभन संकेत है, वहीं दूसरी ओर समृद्धिशाली परम्परा का अन्वाख्यान भी।

१.२.३ कर्णबेध

बुन्देल खण्ड में इसे कर्णछेदन या कनछेदन के नाम से अभिहित किया जाता है। बुन्देली लोकगीतों में कर्णछेदन के भी गीत मिलते हैं किन्तु यह परम्परा अब गुप्तप्राय है। इस संस्कार का आरोग्य की दृष्टि से बहुत महत्व है। इसका रहस्य अति वैज्ञानिक है। यह संस्कार इसलिए सम्पन्न किया जाता था कि स्वांस, दमा आदि बीमारियों की आशंका इससे समाप्त हो जाती थी। पर आज फैशन के युग में लोग इसे भुला चुके हैं। जैसा कि सुश्रुत का कथन है कि रोग आदि से रक्षा तथा भूषण या अलंकार के निमित्त बालक के कानों का छेदन करना चाहिए। अण्डकोश-वृद्धि तथा अन्त्र-वृद्धि के निरोध के लिए वे पुनः कर्णबेध का विधान करते हैं।[८]

१.२४ मुंडन

सिर के बाल प्रथम बार मुंड़ने के संस्कार को मुण्डन, चुड़ा- कर्म याक्षौरकर्म संस्कार के नाम से अभिहित किया जाता है। इस संस्कार के समय गाये जाने वाले गीत—मुण्डन के गीत कहे जाते हैं। मनुस्मृति में इसे द्विजातियों का अनिवार्य धर्म कहा गया है। मनु ने इसे सम्पन्न करने का समय प्रथम अथवा तृतीय वर्ष निश्चित किया है—

चूणा कर्म द्विजातीनां सर्वेषामेव धर्मतः।
प्रथमेऽब्दे तृतीयो वा कर्त्तव्यं श्रुतिचोदनात।

मनु० २।३५

बुन्देलखण्ड में भी यही समय मान्य है। इसमें प्रजावर्ग में नाई का और सम्बन्धियों में बच्चे की बुआ का पूरा योग रहता है। इन्हें सदिच्छा से नेग/भेंट भी दिया जाने का विधान है। इस संबंध में यहाँ एक गीत प्रस्तुत किया जा रहा है।

झालर जबई मुड़ाय हो, जब आजुल घर होंय

ये झालर के कारनें मैंने सहे हैं कष्ट, जी झालर मोरी पाहुनी। ये झालर के कारनें तजे हैं अम्मा, इमलिया बेर। ये झालर के कारनें मैंने सहे हैं बोल कुबोल। झालर मोरी पाहुनी

(बुन्देलखण्डी गीत, पृ० ७५)

इसी समय का एक गीतांश और है—

मांगो, मांगो री ननद बैया जो मांगो सो देय।

(वही, पृ० ६७)

मुण्डन के सन्दर्भ में गाये जाने वाले इस गीत में उन्नत सामाजिक बोध झलकता है। गीत की प्रथम पंक्ति में इसे महत्वपूर्ण एवं खर्चीला संस्कारोत्सव बताया गया है। द्वितीय पंक्ति में गर्भिणी के रूप में झेले हुए स्त्री के कष्टों की स्पष्ट व्यंजना है। तीसरी पंक्ति में गर्भवती के संयम का संकेत हैं—जिसमें वह गर्भ के समय उन भोज्य पदार्थों को त्याग देती है, जो भावी शिशु के लिए अनिष्टकारी बताये गये हैं। इसी में पारिवारिक ताने[१०] जो सासु और ननद के द्वारा दिये जाते हैं, जैसे—"तू गर्भ के घमण्ड में हैं। इतना गुमान न कर, घमण्ड किसी का नहीं चला इत्यादि।"[११] का भी संकेत हैं—जिनको गर्भवती ने सहा है। इन्हीं कष्टों के कारण यह झालर अतिथि के समान प्रिय एवं सम्मान्य है। तभी तो अन्तिम पंक्ति में शिशु की मां अपनी ननद से कुछ भी मांग लेने का वचन देती है। इस अन्तिम पंक्ति का प्रथम गीतांश से सार्थक संबंध भी है, जिसमें इसे (मुण्डन संस्कार को) बहुत खर्चीला बताया गया है।

१.२.५ यज्ञोपवीत

यह अत्यन्त पुनीत संस्कार है। इसे बुन्देलखण्ड में बरुआ कहते हैं। इसी प्रकार इसे उपनयन, व्रतबन्ध और जनेऊ संज्ञा से भी अभिहित किया जाता है। इस संस्कार के वाचक ये सभी शब्द एक ही अर्थ के द्योतक होते हुए भी अपनी विशिष्ट अर्थच्छायाओं से युक्त हैं। यज्ञोपवीत और जनेऊ शब्द अर्थ की दृष्टि से एक ही वर्ग के हैं। ये दोनों शब्द उपवीत धारण करने के निमित्त निश्चित शुभ मुहूर्त के सूचक हैं। बरुआ श्रेष्ठतार्थक और उपनयन[१२] सत्कर्म या सदाचरण में नियोजित होने का द्योतक है। मानव वृक्रसूत्र एवं काठक में उपनयन

के स्थान पर उपायन शब्द का प्रयोग किया है। काठक के टीकाकार आदित्य दर्शन ने कहा है कि उपानय, उपनयन, मौञ्जी बंधन, बटुकरण, व्रतबन्ध समानार्थक हैं।[१३]

अन्यत्र उपनयन शब्द को इस रूप में व्याख्यायित किया गया है—वह कृत्य, जिसके द्वारा व्यक्ति गुरु, वेद, यम, नियम का व्रत और देवता के सामीप्य के लिए दीक्षित किया जाए, उपनयन है—

गुरोर्व्रतानां वेदस्य यमस्य नियमस्य च।
देवतानां समीपं वा येनासौ नीयतेऽसौ॥[१४]

व्रतबंध धार्मिक अनुष्ठानों से बंध जाने का सूचक है। इस संस्कार के निमित्त गाये जाने वाले बुन्देली लोक गीतों के दो वर्ग हो सकते हैं, पहला—उपवीत के सन्दर्भ में और दूसरा भीख पड़ने के समय में गाये जाने वाले गीत।

प्रथम वर्ग के गीत

तीन तगा को डोरा री, दमरी को सूत ए भैया।
तीन तगा को जनवा री कैसो मजबूत सुन भैया।
पैले में विश्नू दूजे विरमा तीजो सूत शंकर अवधूत सुन भैया।
पैले तगा में ओंकार है दूजे में अगन सगुन ए भैया।
तीजे तगा में नाग-वास है चन्द विराजे चौथे सूत ए भैया।
पांचें सूत में पितर विराजें प्रजापती हैं छठवें सूत ए भैया।
सातव तंत अस्थान पवन को सूरज को हैं आठों सूत ए भैया।
नवें तंत में विश्वे देवा हीरा कातें कन्या सूत ए भैया।

(बुन्देलखण्डी गीत, पृ० ६१)

इस गीत में जनेऊ के सामर्थ्य और उसमें देवताओं की संस्थिति की चर्चा है। चूंकि यज्ञोपवीत में चौथा, पांचवाँ, छठवाँ, सातवाँ, आठवाँ एवं नौवां तागा नहीं होता, इसलिए ये पंक्तियाँ जनेऊ के स्वरूप द्योतन के सन्दर्भ में अनौचित्य पूर्ण ही कही जायेंगी।

गीत की तरह यज्ञोपवीत विषयक मंत्र में भी इसकी पवित्रता, शक्तिमत्ता एवं तेजस्विता की बात की गयी है—

यज्ञोपवीत परमं पवित्रं प्रजापतेर्यत् सहजं पुरस्तात।
आयुष्यमग्रं प्रतिमुञ्च शुभ्रं यज्ञोपवीतं बलमस्तु तेजः॥

—पारस्कर ब्रह्मसूत्र १।२।१३ (हिन्दू संस्कार, पृ० १७१ पर उद्धृत)

द्वितीय वर्ग के गीत

इस वर्ग का गीत व्रतबंध में भीख[१५] पड़ने के समय गाया जाता है।

बुन्देलखण्ड में इसे भीख के समय के गीत के रूप में जाना जाता है। इस अवसर का एक गीत इस प्रकार है—

कहाँना से बरुआ चले यारो ठाँडे कहना दोर।
काशी से बरुआ चले यारो ठाँडे आजुल दरबार।
भीखो दे आजी भीखो दे तोरो बरुआ उपासो हो।
भीखो दे आजी भीखो दे, तेरो बरुआ रिसानो जाय।

(बुन्देलखण्ड लोक गीत, पृ० ५०, ६०)

इस गीत के द्वितीय पंक्ति में काशी का उल्लेख है। इस संस्कार के समय ब्रह्मचारी (जिसका व्रतबन्ध हो रहा है) प्रतीक रूप में अध्ययन के लिए काशी जाता है। यह उस प्राचीन एवं सुव्यवस्थित परम्परा का परिचायक है, जिसमें जीवन एक अनुशासन, संयम एवं मर्यादा में व्यतीत होता था। आज वह रूप तो नहीं रहा, किन्तु उसका संकेत अब भी इन्हीं रूपों में मिलता है। यह संकेता ही हमें अपने स्वरूप का बोध (संस्कृति-बोध) कराने में समर्थ है।

१.२.६ विवाह संस्कार

बुंदेली में इसके ब्याह, ब्याव, विहाव, बिआव, बियाव आदि क्षेत्रीय रूप मिलते हैं। विवाह के लिए शादी, परिणय एवं सगाई आदि शब्दों का प्रयोग होता है। यह एक शास्त्री प्रथा है, जिसके अनुसार स्त्री-पुरुष आपस में दाम्पत्य सूत्र में आबद्ध होते हैं। विवाह आठ प्रकार के माने गये हैं—आर्ष, ब्राह्म, देव, प्रजापत्य, आसुर, गान्धर्व, राक्षस और पैशाच। बुंदेलखंड में ब्रह्म विवाह प्रचलित है। विवाह के गीतों में बरपक्ष और कन्यापक्ष दोनों के गीत मिलते हैं। बुंदेली गीतों में विवाह-गीतों की संख्या सर्वाधिक है। इसमें तिलक (सगाई/लगुन) से लेकर सुहागरात तक के गीत शामिल हैं। वैवाहिक संस्कारों में सर्वाधिक महत्व कन्यादान का है। विवाह का कारुणिक प्रसंग तब आता है, जब अपने प्राणों से प्यारी पुत्री को पिता वर को सौंपता है। इसके लिए गीतांश इस प्रकार हैं—

बिच गंगा बिच जमुना तीरथ बड़े बड़े हैं पिराग।
जहाँ बिच बैठे बाबुल मोरे, देत कुआँरन दान।

(बुंदेलखंडी लोक गीत, पृ० ११४)

जिस किसी भी स्थान में कन्यादान का कार्य-क्रम सम्पन्न हो, वह स्थान प्रयाग की तरह पावन माना गया है। साक्ष्य-सन्दर्भ हेतु उक्त नदियों का उल्लेख हुआ है। वैसे भी धर्म ग्रंथों में कन्यादान को सर्वश्रेष्ठ दान निरूपित किया गया है—

अन्न दानं पर दानं कन्यादानं ततः परम्।

१.२.७ द्विरागमन

इसके लिए बुन्देलखण्ड में गौना शब्द व्यवहृत होता है। द्विरागमन (गौना) उस स्थिति में होता है, जब कन्या की वय शादी के समय कम होती है। अधिक वय की लड़कियों को प्रायः विवाह के बाद ही विदा कर दिया जाता है। फिर भी, यह रश्म अभी चल रही है। उक्त विवेचन से स्पष्ट होता है कि भारतीय संस्कृति के उदात्त तत्व, उन्नत सामाजिक बोध, राष्ट्रीय चेतना एवं समृद्ध अतीत से स्वयं को जोड़ने की शक्ति इन गीतों में निहित है। समग्रता के इन महनीय तत्वों से हमारा जनमानस कितना जुड़ा हुआ है, इसे जानने के लिए विभिन्न कोणों से बुन्देली लोकगीतों पर अध्ययन होना अभी शेष है। अभी तक इन लोकगीतों के विविध आयामों का तलस्पर्शी एवं विशद विवेचन नहीं हो सका है। बुन्देलखण्ड के सामान्य जनों की जिह्वाओं पर यथावसर नर्तन करने वाले ये गीत समाज, भाषा विज्ञान, नृतत्व शास्त्र एवं मनोविज्ञान आदि के तत्वों को अपने अन्तर्गर्भ में संजोये हुए अनुसन्धित्सुओं की बाट जोह रहे हैं।

सन्दर्भ संकेत :—

१. डा० काणे-धर्मशास्त्र का इतिहास भाग—१ (हिन्दी रूपान्तर)पृ० १७६।
२. वही, पृ० १७६।
३. वही, पृ० १७७-१७८।
४. गोइड़े—समीप, पास।
५. रोच—रोचना (गुड़भेजना) यह एक रस्म है। संतान होने पर ससुराल पक्ष से नाई रोचना (अक्षत हल्दी का टीका) लेकर मायके (शिशु के ननिहाल) जाता है। वहाँ परिजनों को टीका लगाता है। परिजन नेग, भेंट स्वरूप कुछ द्रव्य, वस्त्रादि आदि देते हैं। शिशु-जन्म के दसवें (दष्टौन) दिन शिशु के ननिहाल से वस्त्र, आभूषण एवं मिष्ठान आदि भेजा जाता है। किन्तु उक्त गीत में सीता के पुत्र होने पर वन से रोचना जाता है। यहाँ रोचना का रूप अयोध्या के लिए सूचना मात्र है, क्योंकि वनवास और नगर के बीच इसका पूरा विधान का पाना संभव नहीं है।
६. कुंवरिया।
७. किस्म, प्रकार।
८. रक्षाभूषण निमित्तं बालस्य कर्णो विध्येत।
—शरीर स्थान १६.१ (डा० राजबली पाण्डेय, हिन्दूसंस्कार १; पृ० १२६ पर उद्धृत)।

९. शंखोपरि च कर्णान्ते त्यक्त्वा यत्नेन सेवनीयम् ।
व्यत्यासाद्वा शिरो विध्येदन्त्र वृद्धि निवृत्तये ॥

—वही, चिकित्सा स्थान १९।२१ (डा० राजबली पाण्डेय—हिन्दू संस्कार, पृ० १२९ पर उद्धृत) ।

१०. ताने-उलाहना युक्त कथन ।

११. इसी सन्दर्भ में अन्य प्रकार की व्यंग्यशब्दावली का भी प्रयोग होता है—इतना न बरो, धरती पर ही रहना है, अंगार न उगलो । इस समय इनका क्या पूंछना है—इनकी धोती आकाश में सूख रही है, उड़ रही है इत्यादि ।

१२. उपनीयते गुरु समीपं प्राप्यते अनेनेति उपनयनम् ।

१३. डा० काणे—धर्मशास्त्र का इतिहास भाग–१, पृ० २०८ ।

१४. वीरमित्रोदय संस्कार प्रकाश भाग—१, पृ० ३३४ पर उद्धृत हिन्दू संस्कार, पृ० १४९ से गृहीत ।

१५. यह भिक्षु कर्म आचार्य और छात्र के उदर-पोषण के लिए होता था । यह मनुस्मृति समर्थित हैं । जैसा कि मनुस्मृति २।५० में आया है—

भारतं वा स्वसारं वा मातुर्वा भागिनीं निजाम् ।
भिक्षेत भिक्षां प्रथमं या चैनं नावमानयेत ॥

इस प्रकार यह सामान्य भिक्षा कर्म (इस समय के) से पर्याप्त भिन्न है ।

संदर्भ ग्रंथ—

१. डा० राजबली पाण्डेय—हिन्दू संस्कार, द्वितीय संस्करण, १९६६ ।
२. डा० पाण्डुरंग वामन काणे—धर्मशास्त्र का इतिहास (हिन्दी रूपान्तर) भाग—१ ।
३. मनु—मनुस्मृति (श्री हरिगोविन्द शास्त्री की हिन्दी टीका), द्वितीय संस्करण, १९६५ ।
४. हीरादेवी चतुर्वेदी—बुन्देलखण्डी लोक गीत ।
५. श्रीमती विनोद तिवारी—बुन्देली एवं बघेली लोक गीतों का तुलनात्मक अध्ययन, १९७९ ।
६. श्री शिवसहाय चतुर्वेदी—बुन्देलखण्डी लोक गीत, १९५९ ।

—प्राध्यापक, हिन्दी एवं भाषा विज्ञान, जबलपुर विश्वविद्यालय ।

———

बूंदों से बातें

मेघ | केदारनाथ अग्रवाल

•

गये,
लौटे चार दिन के बाद;
घिरे-घुमड़े
भीड़ का मंडल बनाये,
कर रहे 'उतपात'—
दीप्त मंदिर
मार्तंडी को छिपाये;
श्यामवर्णी
आसुरी आकाश में
सिक्का जमाये,
वरुण के
बदमाश बेटे
मेघ ।

—सिविल लाइन्स, बाँदा

'वर्षा में मदन महल' | आदित्य ओम

जून की
जमुहाती शाम
रिम-झिम बूंदों के
झिल-मिल पर्दे के पार
पर्वती वृक्षों के
झुरमुट से झांकता
उनींदा 'मदन-महल'
अच्छा लगता है
सच,
बहुत अच्छा लगता है
आँखों को
बाहें की छाती पर
बेसुध सोये
बेटे की तरह ।

—१८८ जवाहर रोड, छतरपुर, म० प्र०

मेव नई साता लै रए

● कैलाश मड़वैया

वरषत रै रै झला गरज कें, घूंटन पौरा वै रये।
लगी, वैन, झिर लौलइयन सें, मेव नई साता लै रये।

नागिन से जे कारी रातें, विजुरी की चकचौंदी।
फोरा से जे वूंदा पर रए, नई टपरिया ओंदी।।
छतियाँ कंप कंपे जात, वैर के झोंका रै रै वै रये।

आंसे घर के नए चुआना, टप टप छप डरवतियाँ।
वछिया रमा रई जी छोड़ें टोरी नई गिरइयाँ।
सांसऊँ टपका वड़ी नार सें जेठे वूढ़े कै गये।

वादर जैसें टोंको होगओ दम नई लेत गुसइयाँ।
विरछै, वूंदे भर रईं-झर-रईं, आंचर कैसी घरियाँ।
वे नई घरें सूदरे सांचे, हम अनुआ से सै रये।

घुतिया भोंजी कसे पोलका, रूठे वार निगोड़े।
पी पी आग लगाय पपीरा, मोर कूक गई गेवड़े।
हियै फरूरी, खवर पिया की, छरे वीजरा दै रये।

आला हो रये माते के नों साईं सावन गा रये।
देख अकेली तिरिया घर में, छैला वीन वजा रये।
सुरतन सांस सिरानी, सेजै साजन सपनै दै रये।

●

चौमासे के पौरा

रतिभानु तिवारी 'कंज'

वसकारे में उन्ना भींजें, दो-दो वेर निचोरें।
गलयारे में पौरा कड़रय, नवा लेत हिलोरें।।

घने मेघ कजरारे लगतइ, लट विखरी गोरी की।
चमकत लाल विजुरिया जैसें, मांग भरी रोरी की।।
चातक 'पीउ पीउ' खों टेरै, नचरइं प्यारीं मोरें।

धरती की धौरी धुतियावें, वादर ने रंग डारौ।
सवरौ आँग हरौ सौ हो गव, ऐसौ गजव गुजारौ।।
कुकरमुता घूरे पै ठांड़ौ, हँसख दांत निपोरें।

भींज गई पगडण्डी गैलें, कटे ठूंट हरयाने।
फागुन के महना में जैसें, फगुवारे गरानें।।
चिरइ-चैनुआं घुसें घेंसुअन, तकें विरछ की झोरें।

विचकें विना नाथ के खैला, नांकें नइ विखारी।
चैन परौ भूरी भैंसन खों, भरी खेत की क्यारी।।
हरवारे हारन खों जारय, घर वैलन पै डोरें।

जिनके सँइयां घर में नइयाँ, वे लै रईं उसाँसें।
हिय में हूक उठै का करवें, चल गये चौमासें।।
आवें पिया भोर वे उठकें, वाट निहारें दोरें।

—पृथ्वीपुर, जिला टीमगढ़, म० प्र०

●

बागी

● डा० परमलाल गुप्त

दोपहर ढलने को थी। फिर भी सब तरफ सनाका छाया हुआ था। रहँट चलने की 'ची-चीऽऽऽ-चूं-चूंऽऽऽ' की आवाज एक लय में वातारण में घुल रही थी। पार्वती कुछ खोयी-खोयी-सी बैलों के पीछे चल रही थी। सब तरफ सुन-सान का घेरा। घरियों का पानी धार बनाता हुआ गिर रहा था।

कुएं के पास खेत के एक टुकड़े में हरियाली थी। पार्वती ने वहाँ पानी लगाते धन्नू पर नजर डाली। आगे धूप की सफेदी सब तरफ सपाट फैली थी। उसने माथे का पसीना पोंछ कर बैलों को टिटकारा। फिर जैसे ही उसने सिर उठाया कि वह ठिठक गयी।

"दाऊ साहब, आप ?" पार्वती के मुँह से अनायास निकला। उसने आश्चर्य से नवागत युवक धनेश को देखा। वह बंडी और ब्रजिश पहने, सिर पर कैप और पैरों में चमरौधा डाले हाथ से पसीना पोंछता खड़ा था। उसका गोरा मुख धूप में तमतमा रहा था। मूँछों की नोंक उसके मुख की तीक्ष्णता को व्यक्त कर रही थी। बढ़ी हुई दाढ़ी से पौरुष झलक रहा था। हाथ में बंदूक और कंधे पर कारतूसों की पेटी। उम्र में पार्वती से दो साल बड़ा था, इसलिये पार्वती उसे 'दाऊ साहब' कहती थी।

"हाँ पार्वती, मेरे पीछे पुलिस है।" धनेशसिंह ने सहजता से उत्तर दिया। उसके स्वर और हाव-भाव में कोई भय नहीं था।

पार्वती ने एक क्षण इधर-उधर देखा, फिर पास की एक झोपड़ी की तरफ इशारा करते हुए कहा—"वहाँ अन्दर चले जाइये। बहुत थके हैं। लेट कर आराम कर लीजिये।'

धनेश कदम बढ़ाता हुआ झोपड़ी में अदृश्य हो गया। पार्वती ने बैलों को टिटकार लगायी और व्यस्तता में उन्हें जल्दी-जल्दी हाँकने लगी। राहँट की घरियों का पानी तेजी से बहने लगा।

कुछ देर बाद घर्र की आवाज के साथ एक जीप रुकी। एक सिपाही उतर कर पार्वती की ओर बढ़ा। पार्वती ने लम्बा घूंघट खींच लिया। धन्नू

भी खेत से दौड़ कर आ गया। सिपाही ने धनेश सिंह का हुलिया बताकर पूछा—"इधर कहीं दिखा तो नहीं ?"

पार्वती ने इशारे से हाथ आगे बढ़ाकर कहा—"मैं ठीक से देख नहीं पायी, लेकिन कोई आदमी उधर पहाड़ की तरफ भागा जा रहा था।"

सिपाही संतुष्ट होकर लौट गया। जीप झटके से स्टार्ट हुई और वेग से दौड़ती हुई आनन-फानन में अदृश्य हो गयी।

● ● ●

धनेश सिंह...एक बागी युवक....पार्वती, इसके लिए अपने को दोषी मानती थी। वह अपने युवा-सौंदर्य से स्वयं बेखबर थी, परन्तु उसके अंग-प्रत्यंग को सुगठित एवं मांसल बनाता हुआ यौवन का उभार कइयों की दृष्टि को घायल कर गया था। लम्बोत्तरा मुख, कर्णस्पर्शी नेत्र, सुती हुई नासिका, लाल रसीले अधर, तुम्बाकार ग्रीवा, नारंगियों से उरोज, पुष्ट मांसल नितम्ब और उनके भार से मत्त गजराज की तरह उठते हुए पैरों की गति अच्छे संयमी युवकों के मन को भी विचलित कर देती थी।

पार्वती को देखकर जमींदार के पुत्र रूपसिंह का दिल एकदम मचल उठा था। वह पार्वती के कुँआरे अनछुए यौवन को अपने आगोश में भरकर मसल देने के लिए बेताब हो गया था। वैसे उसे गाँव में कौन रोक सकता था ? वह केवल अवसर देख रहा था। पार्वती शाम के वक्त जब दिशा-मैदान से लौट रही थी, तब सुनसान देखकर रूपसिंह ने उसे अपनी पुष्ट बाहों में उठा लिया था। पार्वती चीखी-चिल्लायी थी और भरसक प्रतिरोध किया था। इसी छीना-झपटी में वह निर्वस्त्र हो गयी थी। शराब के नशे में चूर और वासना से उन्मत्त रूपसिंह जब घनी अमराई के नीचे उसका शीलभंग करना ही चाहता था, तभी धनेशसिंह उधर आ गया था। धनेशसिंह रूपसिंह का ही चचेरा भाई था, परन्तु गुण और स्वभाव में सर्वथा भिन्न। शिकार से लौटते हुए जब उसने नारी कंठ की दबी-दबी चीखें सुनीं, तो वह अपने को न रोक सका और दौड़कर उधर पहुँच गया था।

धनेशसिंह का खून खौल उठा था। उसने पहले समझाकर, फिर डरा-धमकाकर रूपसिंह को रोकने की चेष्टा की थी। परन्तु रूप सिंह ने आखें निकाल कर कहा था—'देखो धनेश, इस कुर्मी का औलाद के लिए तुम बीच में न पड़ो और फौरन अपना रास्ता नापो। नहीं तो ठीक न होगा।"

धनेशसिंह ने निर्णयात्मक स्वर में उत्तर दिया था—"रूपसिंह, तुम बहुत गलत सोचते हो। इन्सान सब एक हैं, चाहे कुर्मी हो या ठाकुर। सबकी एक-सी इज्जत है। मेरे जीते जी तुम इसका अपमान नहीं कर सकते। भला चाहते हो, तो इसे छोड़ दो।"

फिर दोनों में बात बढ़ गयी थी। रूपसिंह ने धनेशसिंह को एक घूंसा जड़ते हुए दांत किटकिटाकर कहा था—"अगर तूने टकड़-टुकड़ की, तो खून कर दूंगा।"

रूपसिंह ने अपनी जेब से रिवाल्वर निकाल लिया था, परन्तु धनेशसिंह की बन्दूक की गोली पहले ही छूट गयी थी। रूपसिंह चीखकर गिर पड़ा था और थोड़ी देर में शान्त हो गया था।

धनेश सिंह अविचलित था, उसने पार्वती से नपे शब्दों में कहा था—पार्वती, तुम ठीक से कपड़े पहन लो और अपने घर जाओ। तुम इसके सम्बंध में किसी से कुछ न कहना, पता नहीं कौन क्या सोचे।"

यह समाचार बिजली की तरह गाँव में फैल गया था। बन्दूक की आवाज सुनकर एक चरवाहा वहाँ दूर से यह रोमांचक दृश्य देखकर लौट गया था। थोड़ी देर में गाँव के लोगों के आने का शोर निकट आने लगा था। पार्वती तब तक काफी दूर निकल गयी थी। धनेशसिंह तब तक खड़ा रहा था, जब तक पार्वती दूसरे घुमावदार रास्ते से मोड़ से ओझल हो गयी थी। पार्वती ने मुड़कर धनेशसिंह की ओर देखा था। दोनों की दृष्टि एक-दूसरे से टकरायी थी। उधर लोग तेजी से नजदीक आते जा रहे थे। धनेश ने जमींदार के आदमियों को पहचान लिया था। वह उनके पहुँचने के पहले घने जंगल में अदृश्य हो गया था।

तब से धनेश फरार होकर बाकायदा बागी बन गया था। उसने इसी प्रकार भटके हुए युवकों को मिलाकर अपना एक गिरोह बना लिया था। वह डाके डालता था। धनी लोगों के घर में। गरीबों की वह मदद करता था। स्त्रियों के सम्मान का सदा ध्यान रखता था। कई गरीब लड़कियों का ब्याह उसने करवाया। इस रूप में गरीबों का वह देवदूत बन गया। सब उसकी इज्जत करते थे और हर तरह से मदद के लिए तैयार रहते थे। ठहरने, खाने-पीने और जरूरत की चीजें देने में अपना सौभाग्य मानते थे।

परिस्थितियों ने धनेश को बागी बना दिया था, परन्तु उसने इसे एक सैद्धान्तिक लक्ष्य का आधार दे रखा था। वह अपने साथियों से कहता था—"यह कानून अंधा है। यह पूंजीपतियों और जमींदारों की हिफाजत और मदद के लिए ही बना है। भूख से दम तोड़ते हुए गरीब आदमी की मदद कानून नहीं करता। गरीब को शोषण की चक्की में पिसने से यह नहीं बचाता। यदि मैं पकड़ लिया जाऊँ, तो मुझे फाँसी होगी। मुझ पर हत्या और डकैती के संगीन आरोप हैं, लेकिन मैंने किसकी हत्या की? एक स्त्री का शील लूटने की कोशिश करने वाले एक लम्पट की। किसका धन लूटा? उनका, जो अपने बनाये कानून की मदद से जनता का शोषण करते हैं। फिर अपने लिए भी नहीं। गरीब और जरूरत मंदों के लिए, नैतिक रूप में जिनका हक है। इस व्यवस्था के खिलाफ लोगों में चेतना जागनी चाहिए। हत्यारे-डकैत और कम्यूनिस्ट में बहुत थोड़ा फर्क है। केवल कानून और सिद्धान्त का। कानून कम्यूनिस्ट को अपराधी घोषित कर सकता है और सिद्धान्त डकैती और हत्या को नैतिक बना सकता है। क्या सही है और क्या गलत है, यह आप सबको सोचना जरूरी है।"

धनेश की ये बातें लोगों की समझ में नहीं आती थीं। उन्हें उसका आदेश ही पर्याप्त था। पार्वती का पिता गरीब था। धनेश ने ही उसके ब्याह के लिए रुपया दिया था। बाद में भी वह जब-तब उपहार देता रहता था। पार्वती के मन में धनेश के प्रति अगाध श्रद्धा थी। परन्तु इसके साथ एक गहरी कचोट कि उसी के कारण धनेश हमेशा के लिए गृहस्थी के सुख से वंचित हो गया है और इधर-उधर भाग कर उसे खतरनाक जीवन बिताना पड़ रहा है।

जीप के ओझल होने के बाद पार्वती झोपड़ी में देख आयी। धनेश गहरी नींद में सो गया था। पार्वती ने वापस आकर एक गहरी विश्वास ली और फिर बैलों को टिटकारने लगी।

गोधूली से पहले ही उसने बैलों को खोल दिया और खाना बनाने की तैयारी करने लगी। धन्नू बैलों के लिए कटिया काटने लगा।

पार्वती ने संकेत से धन्नू को बताया—"दाऊ साहब आये हैं।"

"पता है। तू क्या मुझे भोसट समझती है?" धन्नू जल्दी-जल्दी हाथ चलाने लगा।

कटिया काट कर धन्नू ने गाय-बैलों की सानी बनायी। फिर दूध दुह कर पार्वती के पास आ गया। पार्वती ने तब रोटी सेंक कर भटे भूंज लिये थे।

आकाश में चाँद निकल आया था। दिन की गर्मी बहुत कुछ शान्त हो गयी थी। चाँदनी का झीना प्रकाश वातावरण को शीतल बनाता हुआ सब तरफ फैल गया था।

गाँव में चहल-पहल बढ़ गयी। मर्दों के आपस में बतियाने, औरतों की खटपट और बच्चों के कबड्डी खेलने की 'तू-तू' के स्वर गड्डमड्ड होकर गूंज उठे। कहीं नजदीक ही दूसरी पाली में जाते हुए एक लड़के का रागमय स्वर सुनायी दिया—होल कबड्डी आउन दो, तबला बजाउन दो....।

धनेश जाग गया। उसका मन अतीत में खो गया, जब वह इसी तरह कबड्डी खेला करता। वह कभी नहीं हारता था। अब जैसे वह जीवन की कबड्डी हार गया है। कुछ देर बाद जब शोर कम हो गया, तब धनेश झोपड़ी से बाहर आया।

धन्नू ने छन्नू, मगन, बिसेसर, छोटू आदि को खबर कर दी थी। भोजन समाप्त होते-होते अच्छा खासा दरबार जम गया। धनेश ने सबको सम्बोधित करते हुए कहा—"देखो भाइयों मैंने अपने नाम से 'सिंह' हटा दिया है। मैं रह गया सिर्फ 'धनेश' और धन्नू हो गये धनेश। दोनों में कोई फर्क नहीं। आप लोग भी जात-पात का भेद छोड़ दें।"

धन्नू ने झेंप कर सिर नीचा कर लिया। ओट में बैठी पार्वती का रंग गाढ़ा हो गया। उसने दाँत से अपनी जीभ काट ली।

धनेश ने क्षणिक विराम के बाद फिर कहा—"स्त्रियाँ भी मर्दों से कम नहीं। वे भी मैदान में आयें। सब गरीब एक हो जायें। आप लोग अपना संगठन बनायें। सोसायटी कायम करें। जमींदार की बेगार न करें। महाजन के चंगुल से बचें, अपनी जरूरत का पैसा और सामान सोसायटी से लें। खेती में मेहनत करें। अपने धंधे बढ़ायें और अपने हक के लिए लड़ें।"

कुछ देर सन्नाटा छाया रहा। इसके बाद धन्नू ने कहा—"हम लोग बड़े आदमियों का मुकाबला कैसे कर सकते हैं? वे बहुत ताकतवर हैं। उनके पास पुलिस है, सरकार है।"

धनेश बोला—"भाई, अपना हक आपको यों ही थोड़े मिल जायेगा। इसके लिए लम्बी लड़ाई लड़नी पड़ेगी। आपको बहुत कुछ खोना पड़ेगा। आप लोगों की एकता अगर मजबूत रही, तो मुझे विश्वास है कि आखिरी जीत आप लोगों की होगी। क्योंकि आप सत्य और न्याय के लिए लड़ रहे हैं।'

मगन के चेहरे पर एक खिंचाव आ गया। उसने कहा—'हम सब आपस में मिलकर रहेंगे और अपने हक के लिए लड़ेंगे। आप हमारा संगठन बनवा दें।'

'आप लोग खुद अपना नेता चुन लें। समझा-बुझा कर लोगों में चेतना जगायें।"

'हम लोग आपको अपना नेता मानते हैं।' मगन ने फिर कहा।

'नहीं, वह आप लोगों में से होना चाहिए।'

"तब धन्नू भाई को हम अपना नेता चुनते हैं।" धन्नू और छोटू ने एक साथ कहा।

'हाँ, यह ठीक है। अब मैं न भी रहूँ, तो कोई चिन्ता नहीं। अच्छा भाइयों,

मेरा सबको नमस्कार। मैं चला। आधी रात बीत चुकी है। भोर होने से पहले मुझे अपने ठिकाने पर पहुँचना है।" धनेश ने उठते हुए कहा।

'अब कब मिलेंगे दाऊ साहब?" धन्नू ने पूछा।

'कुछ कह नहीं सकता। लेकिन तुम अपने को धनेश ही समझो।' धनेश ने कदम बढ़ाते हुए कहा। शीघ्र ही वह पहाड़ियों की ओट में अदृश्य हो गया। तब तक सब लोग खड़े एकटक उसे देखते रहे।

लोगों के मन में पता नहीं क्या-क्या घुमड़ रहा था। धनेश ने उससे छुटकारा दिलाते हुए कहा—'अच्छा भाइयो, नये भोर का इन्तजार···'

वहाँ से चलते वक्त सबके मुख पर एक निश्चय की दृढ़ता थी।

०००

धनेशसिंह को जीवित या मुर्दा लाने के लिए दस हजार का इनाम घोषित किया गया। पुलिस भी पूरी तरह से सक्रिय हो गयी। इसका मुख्य कारण यह था कि इधर एक महीने में पाँच डकैतियाँ पड़ीं। इनमें एक को छोड़कर धनेश ने कोई डकैती नहीं डाली थी, परन्तु उसका नाम सभी डकैतियों में जोड़ दिया गया था। शेष चार डकैतियाँ राव बीरेन्द्रसिंह के आदमियों ने डाली थीं। इनमें पुलिस भी शामिल थी। राव बीरेन्द्रसिंह इलाके के जमींदार और प्रसिद्ध नेता थे। इसलिए सारा दोषारोपण धनेशसिंह पर करके छुट्टी कर दी गयी थी। धनेशसिंह ने लाला गजाधर प्रसाद के यहाँ जो डकैती डाली थी, वह भी बड़ी मजबूरी में। बात यह थी कि जब धन्नू और उसके साथियों का आन्दोलन जोर पकड़ने लगा, तब लाला गजाधर प्रसाद ने कई लोगों पर बकाया कर्ज की नालिश ठोंक दी। इधर जमींदार के आदमियों ने परेशान करना शुरू कर दिया। लोगों की घर-जमीन की बेदखली की नौबत आ गयी। सरकार में पहुँच न होने से सोसायटी को अनुदान नहीं मिला। तब धनेशसिंह ने एलानियाँ डकैती डाली। गाँव के लोग चुपचाप देखते रहे। किसी को खरोंच भी नहीं आयी। फिर भी इस डकैती को सबसे खतरनाक माना गया, क्योंकि इससे व्यवस्था के चरमरा जाने का खतरा था।

धनेशसिंह का अन्त शीघ्र हो गया। शायद जानबूझ कर। इधर धनेश जिस सामाजिक क्रान्ति की बात करता था, उसमें उसने अपनी सार्थकता को बिल्कुल नकार दिया था। उसकी अनायास राव बीरेन्द्रसिंह के आदमियों से मुठभेड़ हो गयी। उसकी पसली और कंधे में गोलियाँ लगीं। खून बहने लगा। घावों को गमछे से कसकर और साथियों से विदा लेकर वह शीघ्रता से भागा।

घनघोर अँधेरी रात थी। सब तरफ सन्नाटा छाया हुआ था। वह उस जमीन के चप्पे-चप्पे से परिचित था, इसलिये बिना किसी कठिनाई के वह धन्नू के घर के दरवाजे पर पहुँच गया। उसके मन के किसी कोन में पार्वती से अन्तिम मिलन की आकांक्षा भी जोर मार रही थी। वह कुछ देर पशोपेश में खड़ा रहा, फिर उसने विशेष अन्दाज में किवाड़ खटखटाये। उसका एक संकेत।

पार्वती ने आँखें मलते हुए किवाड़ खोले। धन्नू भी जाग उठा। धनेश को पहचान कर पार्वती ने कहा—"अन्दर जा जाइये, दाऊ साहब।"

"नहीं पार्वती, बस मैं चला। मुझे गोलियाँ लगी हैं। सोचा अन्तिम बार आप लोगों से मिल लूं।" धनेश का स्वर काफी क्षीण था।

"तब तो मैं किसी हालत में आपको न जाने दूँगा।" धन्नू ने जोर देकर कहा।

"देखो भाई, मैं तुम्हें झमेले में नहीं डालना चाहता। मैं जानता हूँ कि इलाज से भी मैं नहीं बच सकता। घण्टे-दो-घण्टे का मेहमान हूँ। इसलिये दूर निकल जाऊँ तो अच्छा है।"

"तो ठीक है। मैं भी आपके साथ चलता हूँ। धनेश उसी तरह जिन्दा रहेगा।"

"और मैं भी चलती हूँ।" पार्वती की आँखें भर आयी थी। परन्तु स्वर में कठोरता और दृढ़ता थी।

पार्वती के इस कथन से भीषण दर्द में भी धनेश के ओंठों पर मुस्कराहट आ गयी। उसने परिहास से कहा—"क्या पुतलीबाई बनने का इरादा है?"

"पार्वतीबाई क्या कम है, जो पुतलीबाई बनूंगी?"

"नहीं, यह सब ठीक नहीं है। मेरा यह रास्ता गलत है। वह तो परिस्थिति ऐसी थी कि मुझे बागी बनना पड़ा। तुम लोग यहीं समाज में रह कर क्रान्ति की ज्योति जलाओ, तभी उसे मान्यता मिलेगी। मेरे रास्ते पर चलकर नहीं। मैं हमेशा डकैत और हत्यारा समझा जाता रहा। इस रास्ते जाने से तुम भी वही-समझे जाओगे। अतः यहीं रहकर क्रान्ति के लिए संघर्ष करो। यह मेरा आदेश है। अब मैं चलता हूँ। मेरी शुभकामना तुम सबके साथ है।"

धनेशसिंह यह कहकर तेजी से अंधेरे में विलीन हो गया। पार्वती और धन्नू स्तम्भित देखते रहे। पार्वती ने अपने आँसुओं को आँखों में ही सोख लिया।

—एस० एच०, गोपाल कालोनी, शास्त्रीनगर, सतना, म०प्र०

बुन्देली कहानी

मास्टर जू

सुरेश 'पराग'

टिहुनन सें गिलाये में गपत खचर-पचर कुरत जब विकास ऊ गांव के गंवड़े पोंचो तो ऊकी पूरी देहन लस्त हो गई हती। पैले तो ऊनें सोची कै इतईं से लौट जाबें औ साहब सें कै देवें, हमें नईं कन्ने से ऐसी मास्तरी, फिर ऊके मन में कई बस विकास इतईं में हिम्मत हार गये, येईंके भरोसें दम भरते। तुमने खुदई तो ई गाँव में आबे की कही हती। कौनऊ मास्टर न आउत हते, तब तुमईतो उठ के ढाँड़े हो गये ते—साब हम जैवी उतै पढ़ाबे, और साहब नें पीठ ठोंककें स्याबासी दईती और कही ती—'अब हमें भरोसो हो गओ कै देस को कौनऊ गाँव शिक्षा के बिना न रैजैहै। तुमाये जैसे युवकन पै देस खाँ गरब है।'

उनमें विकास खाँ नियुक्ति पत्र लिख दओ तो और गाँव के सरपंच खाँ एक चिट्ठी लिख दईती। जहाँ जाके विकास खाँ स्कूल खोलनें हतो।

जब विकास ने घरै जाकें माता जी खाँ बताओ तो वे टुकुर-टुकुर मों देखत रह गईं तीं—'विकास हम तो तुमें डाक्टर बनाओ चाहते। फिर तुमाये घर में काये की कमी है, जौन तुम पढ़ाई छोड़ कें मास्टर बन गये। जब विकास नें ऊ गांव की दशा बताई तो वे खुशी सें राजी हो गईं तो अब गेबड़ें आकें ढीले पर गये। आगे बढ़ो विकास विकास! के मन ने कही। ऊहे लगो कै गांव के गरीब बिना पढ़े लिखे छोटे-छोटे लड़का चिल्ला के बुला रये हैं—

मस्टर जी, बड़े भाग सें आये हो। तुमई लौट गये तो हमाई जिन्दगी फिर माटी की माटी रही कहाई।'

विकास ने कतई नरवा मे हाँतन-पाँवन को गिलाव धोओ। थैला से निकार कें पैजामा पैरो, थैला कंधा पै टाँग कें गाँव खाँ चल परो।

लोलइया पर आईती। घरन में दिया-डब्बी हो गई ती सब अपने ढोर-बछेरू के उसार मे लगे ते। कछू जनन नें विकास की तरफ देखो और काम में लग गये। गैल में एक आदमी सें 'राम-राम' करकें विकास ने सरपंच की बखरी पूछी तो ऊनें कही—'मालक अपुन खाँ तनक और चलो जानें।

दायने हाँथ खाँ एक नीम की पेडो पर है, बस आई कें सामूँ [illegible] की पक्की चोखेंट बखरी उनई की आये। उतै जाकें विकास नें देखो कै, दुगई में एक तखत पै सरंपच बैठे ते। खाले चोंतरा पै चार छै जनें और बैठे हते। वे स्कूलई की चरचा कर रयेते 'का करिये भैया ? कोनऊँ मास्टर ई गाँव मे आबे तैयार नई होत ! हमें तौ रहनें है सो भोगनें है। दूसरन खाँ का परी हमाये संगै आकें मरें ! खूब लिखा पढ़ी कर लई, दस सालें हो गईं; अब नईं कन्नें।'

उननें एक सांस लई और चिमा रये। तबई विकास आगें बढ़ो और राम राम करकें बोलो—अब आपखाँ लिखा पढ़ी की जरूरत न परहै।'

उनें चिट्ठी और कागज उनें दै दये। उननें लालटेन के उजियारे में पढ़ो तो खुसी से उनकी बूढ़ी उंगरियाँ कँपन लगीं। वोले—''लेओ भइया हरौ, जे आगये मास्टर जी। जे अपनई मन सें आये इतै पढ़ाबे।'

इतनौ सुनतई सब जनें उठकें ठांड़े हो गये, जौलों विकास कुछ समझै, वे पावन तरें झुक गये—आपकी जै होवै भइया। जौ वहुत साजो करो !' सरपंच नें जबरई पकड़कें विकास खाँ अपने संगै तखत पै बैठारो। एक आदमी जल्दी सें पानी ले आओ। विकास नें फिरकें हाँत मों धौकें पिओ ! सरपंच ने कही—मास्टर जी के लानें चाय वनवाय दइओ।'

'चाय तौ हम पियत नइयाँ चाचा जी।' विकास नें कही, तौ सरपंच बोले—'अच्छा तौ दूधई तातो करवा ल्याव।'

विकास नें दूद पियो, तौलों सरंपच नें दूसरे चौंतरा में खटिया बिछवा दई' 'उतनी दूर सें निगत आये हो। थक गये हूहौ, तनक पर कें सुस्ता लेव।'

'हाँ वोहतई खराब गैल है।'

'चार मइना चौमासे के परेशानी होत। फिर तौ साईकिल चलन लगत' सरंपच साब ने कही।

विकास परो तो फिर तबईं उठो जब सरंपच नें ब्यारी के लानें जगाओ। बात में सरंपच ने विकास सें उके घर गाँव की पूंछी। पढाई-लिखाई की बात चली तौ सरपंच की उनें कही—'तुम अच्छे आगये बेटा ! बड़ो पुन्न हूहै। हो सकत कै हमाई सोना को जीवन सुधर जाये।'

'कौन सोना ?' विकास ने पूछी।

'एकई तौ बिटिया है हमाई ! सोना आज पार चार सालें हो गईं—ब्याव भयें। न लड़का राखै, न ऊकी ससुराल सें कोऊ लिवावे आउत ! एकठौ बिटिया ओई के करम में सुख नईं बढ़ो।'

'काये ?'

'अब का बताइये। देखत सुनत की है। काम उसार सब कर लेत। दान-दायजो सब दओ। बस लड़का कहत (पढ़ी-लिखी नइयाँ, सो नईं राखनें। अब तुमई बताव बेटा ! पढ़ावे में अपनी का जोर हतो ! थोड़ी भौत जौन सोना के बापू जानते, सो 'अच्छर ग्यान करा दओ !'

'है कां सोना ?' विकास ने पूंछी !

'भीतर लुकी बैठी। हमनें कही तो, सोना तुमई परस दइयो, सो कातती हमें लाज लगत। हम न परसवी।' सोना के बापू ने सोना खाँ टेरो—'सोना बाहर आव। सास्साब सें जैराम जी की करो।'

सोना लजात सकुचात बाहर निकरी। उनें विकास सें जैराम जी करी। ऊकी दयावनी सूरत देखलें विकास को जी भर आओ ! ऊनें सोची, ईमें बिचारी सोना कौ का दोस है। घरवालन खाँ पेहलेई सोच समझ कें रिश्ता करो चाहियते। पढ़े लिखे घर में बिना पढ़ी लिखी बहू को नदारो कैसें हो सकत।

विकास औ सोना के बापू अँचैं कें बाहर आ गये।

विकास ने कहीं—''अबै कछू नईं बिगरो। सोना मन लगा कें पढ़ै तौ दो साल में ग्यारवीं पास हो सकत।''

''ऐसौ हो सकत बेटा ?'' सोना के बापू नें पूँछी।

''हओ, सरकार नें प्रौढ़ शिक्षा सोऊ चलाई है। इको नियम ऐसो है कै जीनें कभऊँ कौनऊँ स्कूल में न पढ़ो होय और ऊकी उम्मर इकईस साल से ऊपर होय, बौ सीधे ग्यारवीं की परीक्षा में बैठ सकत। मजिस्ट्रेट सें उम्मर कौ प्रमाण पत्र भर बनवावनें परहै।''

''ऐसो हो जाय तौ का पूंछनें। बिटिया कौ जीवन तौ सुधर जैहै। तुम तौ कालई सें सोना खाँ सोई पढ़ाउन लगौ।''

और नहे-महे की चर्चा होत रही, फिर दोई सो गये। श्याने भये सें विकास स्कूल के काम में जुट गओ। गाँव में स्कूल न हतो सो उतईं सरपंच की दुगई में लड़का आउन लगे। विकास सकारें सें संझा तक लड़कन संगै लगो रहके। ऊनें, उनें सफाई सें रहबे को ढ़ंग सिखाओ। खेल-कूद सिखाओ। घर-घर में जाकें सबसें मिलो। पढ़ाई कौ मरम बताओ !

दिन भर बौ स्कूलई की तरक्की में लगो रहे। रहवे के लानें सरपंच की दुगई कौ कोठा और खँबे के लामें उनकौ घर। दो चीजन की चिन्ता तौ तहिअई न। ऊके मिलनसार सुभाव और ऊके कामनें गाँव भर कौ मन मोह लओतो। लड़का तौ सकारेई सें स्कूल जावे की अड़ी सी लगा देतते।

रात कें सब काम सें फुरसत होकें विकास घन्टा दो घन्टा सोना खाँ पढ़ावत तो ऊके मन में एकई बात हती, कैसऊ जैसऊ, सोना कौ जीवन सुधर जावै। सोना सोई खूब मन लगा कें पढ़ती। उहे लगतो कै हम पढ़ लिख जइये, जीमें ससुरार में सब कोऊ हमें चाहन लगें।

देखत-देखत चौमासे के चार मइना निकर गये औ दसहरा की छुट्टियन के दिन आ गये। एक दिन विकास नें गाँव के आदमिन खाँ अथाई पै बुलाओ और कहो "गाँव में स्कूल अलग सें भओ चाहिये। सब जनें चाहें तो स्कूल बन सकत। कछू पइसा गाँव में जोड़ लओ जाय, कुछू सरकार सें मिल जैहै।"

गाँव के आदमिन नें कही—'एक स्कूल कौ सामान तौ गाँवई सें जुर सकत।'

सबनें विकास की बात मान लई। काऊनें ईंटें दईं, काऊनें लकड़िया, काऊनें बिना मजूरी लायें काम करो। और मइना भर में स्कूल बनकें तैयार हो गओ।

सुदिन के लानें विकास नें साहब खाँ बुलवाओ। विकास कौ काम देखकें साहब नें स्याबासी दई। विकास की माता जी कछु दिन के लानें विकास सें मिलवे आईं, तौ गाँव भर सें विकास की बड़ाई सुन कें उनकी छाती फूल गई। एक दिना सोना की बाई नें उनसें कहीं—"बैन तुमाओ जैसो बेटा भगवान सबखाँ देवै। गाँव के तौ भाग लौट आये। हमनें कभऊँ सपनन तक में न सोचीती कै ईगाँव के दिन फिरहैं। हमाई सोना के लानें तौ तुमाओ बेटा भगवानई बन कें आओ। कहत कै आँगन तक ग्यारवीं कौ ज्ञान करा देहै।

दिन बीतन लगे। सोना कौ ग्यांन बढ़न लगो। और गाँव में विकास कौ मान सोई बढ़त गाओ। जब विकास खाँ लगो कै अब सोना पास हो सकत, ऊने सोना और सरपंच खाँ लिवा जाकें मजिस्ट्रेट सें उम्मर को प्रमाण-पत्र बनवाऊँ ग्यारवीं कौ फारम भरवा दओ। परीक्षा एँगर आउन लगी, तौ सोना रातन जगजग पढ़न लगी। खूब याद करै, लिखै, जहाँ समझ में न आवै विकास सें पूँछै। सोना के मन में विकास के लानें बोहतई मान हतो। जब देखै, तब दोई पढ़ाई की चर्चा में लगे रहते।

आदमी कौ सोचो आज तक पूरो नई भओ। भगवान के इते तौ कछू औरई रचना रची जा रही ती। एक दिना सोना की ससुरार सें खबर आई कै सोना के घरवारे की हत्या हो गई। वे गाँव में काऊ के घरै मों कारो करवे घुसेते सो उन्नें काट कें फेंक दओ।

सोना नें हातन की चुरियाँ फोर डारीं। माँग को सिन्दूर पोंछ लओ। जब रोउत किलपत बापू संगै ससुरारै पौंची तौ उतै दिन तेरईं सब हो गओतो।

जब सोना के बापू लौटन लगे, तौ सोना के ससुर ने कही—"आप बहू खाँ लिवाय लेत जाव। उतै कम सें कम मन तौ भरमो रहै। और सोना जैसई गइती ऊसई लौट आई। ऊनें पढ़वो लिखवो बन्द कर अयो तो।

जब कछू दिन हो गये, तब एक दिना विकास नें समझाओ—'देखो सोना, जॉन होनें हतो सो हो गओ। ऐसें जीवन तौ काटो न कटहै। अब तुम फिर सें पढ़बेई में मन लगाओ।'

अब कीके लानें पढ़नें मास्टर जी। हमाये भाग में·····'कहत कहत सोना को गरो रुँध आओ। ऊनें आँचर सें अपनी आँखें पोंछ लईं और उतै सें उठ गई।

जैसें जैसें दिन निकरत गये, ऊसई ऊसई सोना कौ दुख हरओ होन लगो। विकास के और सखी सहेलियन के समझाये सें पढ़बे में मन लगाऊन लगी।

सोना परीक्षा में बैठी और पास हो गई। सबसें ज्यादा खुशी विकास खाँ भई। ऊनें गांव के मन्दिर में कीर्तन कराई। परसाद बाँटो। एक दिना विकास कढ़ाई-बिनाई की किताबें और सामान लै आओ और सोना सें बोलो—"अब तुम कढ़ाई बिनाई सीखो करे।'

सोना ने कही—'तुम कितनो ख्याल करत हो। इतनो तो कोऊ अपनी भी नईं करत।'

'ईमे अपने पराये की का बात है। जो तौ हमाओ धरम आय।' विकास नें कही और सोना कढ़ाई-बिनाई सीखने लगी।

विकास के मन में कुल्ल दिना सें एक बात हती। मौका पाकें सोना के बापू सें कही—'चाचा जी सोना को जो कसतो जनम भर खाँ हो गओ।'

'और करई का सकत बेटा। ऊकौ दुखकें छाती फटी जात। वौ तौ तुमने पढ़ा लिखा दओ सो किताबन में भरमी रहत।'

"आप कहो तो कहूँ चर्चा चलाइये।"

'ऐंसो न सोचियो बेटा। हमाये धरम में जो नईं लिखो। हम मर जैबी पै जो न होन देबी।'

"और जो लिखो है, बिटिया जा जिन्दगी रँड़ापो भोगत रहै। अच्छा जो बताव, अगर सोना मर जाती तो ऊके घर वाले कौ दूसरो ब्याव हो जातो कै नईं?'

सोना के बापू की तरइयाँ भर आईं। बोले—'बेटा हमसें तो कोई ऊको दुख नई देखो जात, पै जात बिरादरी वाले ऐसो न होन दैहें। और तैयार को हुहै विधवा संगै ब्याय करबे।'

जात-बिरादरी वालन खां का परी। उनें ती हँसबे को मौका मिलो।'

जीके पाँव में बिमाई फटहै, पीरा तौ ओई खाँ हुहै। तुमईं सोचो। रही तैयार होबे की बात सो अब जमानो बदल रहा है। बिधवा विवाह पाप नईं मानो जात। कौनऊँ न कौनऊँ लड़का तैयार होई जैहै। फिर सोना तो सुन्दर, सुसील और अब तौ ऊनें पढ़ सोऊ लओ है।'

'जैसी तुमें जान परै।' सरपंच नें हथियार डार दये। हमाई तो कछू समझई में नई आरओ। विकास नें सोना खाँ समझाओ। पैहले तौ बा भी नाहीं करत रही, बाद में मान गई। गाँव वालन खाँ पता चलो, तो वे बोले—'मास्टर कौ दिमाक खराब हो गओ हैं। ऐसो भओ आज तक कहूँ।'

विकास ने हिम्मत न हारी और एक दिना उनें समझालओ। अब विकास के सायूँ समस्या आई लड़का कहाँ ढूँड़ै। ऊखाँ अपने दोस्त मोहन को ध्यान आओ। ऊके विचार समाज सुधार कहबे। घरवाले नये विचारन के हते। बौ सहर गओ और मोहन खाँ पूरी हाल बताओ, तो उनें पूंछी—तुम खुदईं काये नईं कल्लेत।'

'देखो मोहन हम कल्लेते, पै हमनें सोना खाँ पढ़ाओ है। लाखाऊँ वा हमाई बरोबर की होय, हमाये लानें बिटिया बरोबर है। फिर ईको गलत मतलब निकर सकत। हाँ हम तुमें विश्वास दै रहे कै हम सांई कौनऊ विधवा संगै ब्याय करबी। विकास की बात मोहन खाँ समझ में आ गई।

उनके घरवाले भी खुसी से राजी हो गये और एक दिना सोना फिर से दुल्हन बन गई। वा बापू और बाई सें लिपट-लिपट रोई और जब विकास के पांव परन लगी, तौ उनें हाथ पकर लये—'अरे....रे, कहूँ बिटिया बाप के पांव परत।''

विकास नें सोना के अँसुआं पोंछ कें डोली में बैठाओ। गाँव के आदमी और गाँव की धरती खुसी सें रोउन लगी।

—देवेन्द्रनगर, पन्ना, म० प्र०

कविवर काली की स्मृति में

मारतंड की मरीचैं

● पं० कालीदत्त नागर 'काली कवि'

[जन्म—१८४० ई०, स्वर्गवास-१८२० ई०, निवास-उरई, प्रकाशित ग्रंथ-हनुमत्पताका (सं० १८४६ एवं सं० १८६६), गंगागुणमंजरी (सं० १८६६) और छविरत्नम् (स० १८६६)। अप्रकाशित रचनाएं-ऋतु-राजीव, कवि-कल्पद्रुम, रसिक बिनोद, जुगल सहस्र नाम, विदम्बर रहस्य, हनुमत् अष्टक, उड्डीशतंत्र एवं खड्गिमाला।

श्री अरुण कुमार 'अरुण' ५३, विजयनगर, कवि काली मार्ग, उरई ने सूचित किया है कि काली कवि का समस्त साहित्य श्री श्रीनारायण चतुर्वेदी, लखनऊ के पास पहुँच गया है, पर वे न तो छपा रहे हैं और न दे रहे हैं। वस्तुतः प्रकाशन की समस्या जटिल है। जहाँ तक बुंदेलखण्ड साहित्य अकादमी की बात है, उसका प्रमुख उदेश्य प्रकाशन ही है। समर्थ होने पर (और वह समय दूर नहीं) वह प्रकाशन करेगी ही। श्री अरुण जी से और सभी सम्मान्य सज्जनों से उसका यही विनम्र निवेदन है कि साहित्यिक सम्पदा अकादमी को प्रदान कर सुरक्षा की गारंटी लें।—सम्पादक]

मृगजल वीचिन की प्रखर खरीचैं देख,
वारि विरहीन के विलोचन उलीचैं हैं।
'काली कवि' ग्रीपम की कठिन कुतार झार,
सहत न रहत चकोर दृग मीचैं हैं।
घामन घमातीं जे ततातीं तप्त आहन सीं,
दाहन दढ़ीं जे दीह दुपट दरीचैं हैं।
गुनन गढ़ीं जे मैन मंत्रन पढ़ीं जे
नभमंडल मढ़ीं जे मारतंड की मरीचैं हैं॥

●

झूम झूम नाचत सीं राचत अनंग रंग,
माचत उमंग सुर तालन के पुंज की।

'काली कवि' वदन विहंग वर बानी बीन,
नूपुर नवीन धुन होत अलिगुंज की।
राज रितुराज राज करत बिहारावली,
हारावली साज साज सुमन सुमुंज की।
पद रमिता है कै पतान की पता है यह,
बार बनिता है कै लता है ब्रज कुंज की ॥

•

पुहुप परागन की पगरी परी है छूट,
उधर परे हैं दल दावन किनारे के।
फहर फबे हैं फैल फूंदने गुलाबन के,
दृगन दबे हैं मद मदन दवारे के।
'काली कवि' साली के समूहन छिके हैं मग,
झूमत झुके हैं मद घूमत घुमारे के।
मन्द मन्द आवत समीरन सुगंध अंध,
देखो फल फंद लै बसंत मतवारे के ॥

(ऋतु-राजीव से)

बतियान बिना सुतियानहूँ की छतियान पै आन अँगीठी करैं।
'कवि काली' भरी सखियानहूँ में अँखियान को रंग मजीठी करैं।
नित ठीठी करैं सब चीठिंन की दुतियान हूँ की त्यों निसीठी करैं।
गति मीठी सुधान की सीठी करैं यह सीठी कहा न वसीठी करैं ॥

आब भरो महताब सु बा मुख की सुषमा लख मात सो हुइ गयो।
'काली' विलोकत ही पल में जल में जलजात लजात सो हुइ गयो।
बोल सुनें मिठबोलिनि के हलुआ बिन मोल बिकात सो हुइ गयो।
चाँदनी रात सो गात लखैं मुख सौतन को परभात सो हुइ गयो ॥

•

लाल है मोहन माल हिये सुविशाल प्रवाल रही उर हाल है।
हाल है हाल में एरी सखी 'कवि काली' सो मोपै निहाल गुपाल है।
पाल है प्रेम हमारो भटू वह साँवरो रावरो रूप रसाल है।
साल है सौतन के उर में जबसें संग मैंने लखो नंदलाल है।

•

घर बैरिन साजें बधाई भलें घरहाई भलें दतकौंधी करैं।
बकबे फिरें वाही तबाही भलें औ चबाई भलें चकचौंधी करैं।
'कवि काली' न और कछू डर है तुमको चहिये मन सौंधी करैं।
कहती न कछू सहती सब की हमतो रहती सिर औंधी करैं ॥

•

मुख बैरी ससि बदन है, लिये किरन करवाल।
सखिन लगाई ढाल कैं, बैंदी के मिस ढ़ाल ॥

•

सुत जायो प्राची सची, छूट गय इक संग।
भुजबंधन से भामिनी, अरविंदन से भृंग ॥

—(श्री अरुण कुमार 'अरुण' उरई के सौजन्य से)

———

कब बरसें बादर | • बंशीधर रतमेले 'दुर्गेश'

अब दिन गौने के नियराने, चलें न एक बहाने।
गोरी की तिरछी हेरन में प्रीतम भये दिवाने।
भाँत-भाँत की झिलमिल सारी नई चाल के गाने।
'बंशीधर' कब बरसें बादर इनके कौन ठिकाने ॥

—उपडाकपाल, चिरगाँव (झांसी) उ० प्र०

शब्द बोलते हैं

ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक संस्मरण

● डा० हरगोविन्दसिंह

शब्द हमारे दैनिक जीवन में विचार-विनिमय का माध्यम मात्र नहीं हैं। वे समाज के अनेक ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक तथ्यों की जानकारी देने वाले महत्त्वपूर्ण बीजक की भूमिका भी निभाते हैं। मनुष्यों द्वारा दी गयी सूचनाएँ झूठी निकल सकती हैं, परन्तु शब्दों की सूचनाएँ पत्थर की लकीर सिद्ध होती हैं। यदि शब्दों के उद्गार सुनने-समझने का अभ्यास हो, तो हम पाएँगे कि अतीत के संस्मरण, अनुभव, मान्यताएँ और विश्वास ये बिना किसी दुराव-छिपाव के सीधे सच्चे ढंग से व्यक्त करते रहते हैं। यहाँ इस लेख में इसी प्रकार के कुछ बुन्देली शब्द प्रस्तुत किये जा रहे हैं।

चाहे कोई अवतार हो, चाहे ऋषि-महर्षि, यदि उसके व्यक्तित्व में कोई निराली बात रही है, तो उसे बेलाग ढंग से व्यक्त करने में शब्दों की स्मृति चूकती नहीं। सोलह कलाओं के अवतार भगवान श्रीकृष्ण बहुमुखी क्षमताओं के धनी थे, परन्तु बुन्देली में **कुँअर कन्हइया** शब्द छैल-छबीले युवक का वाचक बनकर गोपीवल्लभ द्वारा रची गयी प्रणय-लीलाओं का डंका ही मुख्य रूप से पीट रहा है। देवर्षि नारद को सभी जगह आने-जाने और खाने-पीने की सुविधा प्राप्त थी। जन सामान्य ने उनकी अन्य सभी विशेषताओं को छोड़कर केवल मनचाहा भोजन प्राप्त होने के लाभ वाली बात याद रखी और किसी भी पेटू व्यक्ति को **नारद मुन** कहना चालू कर दिया।

भूमि पर बुरी तरह घसीट कर किसी की खासी मरम्मत किये जाने की क्रिया **कंस-कढ़ोलन** कही जाती है, जो श्रीकृष्ण द्वारा कंस को चोटी पकड़कर घसीटे जाने की स्मृति चिरस्थायी किये हुए है।

पौराणिक काल की **कैकेयी** और **द्रौपदी** संज्ञाएं व्यक्तिवाचक थीं, परन्तु इन नारियों के कृतित्व की कटु स्मृतियों ने इनके नामों का ऐसा अर्थ-विस्तार किया कि अब किसी भी कर्कश स्वभाव वाली स्त्री को **कैंकई** और गृहकलह करा देने वाली को **द्रोपती** कहा जाने लगा है। यही हाल **बेला** शब्द का है, जो बंटाढारनी स्त्रियों के लिए बुन्देलखण्ड का सुप्रचलित शब्द है। स्मरणीय

है कि यह बेला पृथ्वीराज चौहान की उसी बेटी का नाम है, जिसके डोले ने चौहानों और चन्देलों का महाभारत कराया था।

बुन्देली में प्रचुर के अर्थ में **मुलक** और **बिलात** शब्द प्रयुक्त होते हैं, जो अरबी के मुल्क तथा विलायत शब्दों के अर्थादेश हैं। इसी अर्थ में **मधाता** का भी प्रयोग होता है, जो चक्रवर्ती सम्राट् मान्धाता के वैभव का सूचक है।

किसी पर विशेष कृपालु अथवा सन्तुष्ट होने के अर्थ में एक रोचक शब्द प्रचलित है—**बरम्बू**। सन्तुष्ट होने पर देवताओं आदि के मुख से देवभाषा का वाक्य 'वरं ब्रूहि' निकलता रहा है। आगे चलकर यह विश्वास रूढ़ हो गया कि वरं ब्रूहि वही कहता है, जो विशेष कृपालु अथवा सन्तुष्ट हो। इस प्रकार **बरम्बू** शब्द से सीधे 'वरं ब्रूहि' के कथक का ही बोध होने लगा।

विरुद अथवा गौरव की बात को **साखौ** या **साकौ** कहते हैं, जो मूलतः राजा शालिवाहन द्वारा प्रवर्तित संवत् 'शाक' से सम्बन्धित है।

न्याय पाने के लिए मुकदमा तो आज भी लड़ा जाता है और राजनीति में विजय की अभिलाषा से चुनाव लड़े जाते हैं। इस प्रकार इन दोनों क्षेत्रों के उक्त पदबन्ध अभी तक 'लड़ाई' की स्मृति सँजोये हैं। राजाओं-सामन्तों के अधिकांश फैसले युद्ध-क्षेत्र में ही होते थे। वहाँ न्याय के लिए मुकदमा किसके यहाँ दायर होता? युद्ध ही लड़ा जाता था। यही कारण है कि न्याय से व्युत्पन्न **न्याव** शब्द बुन्देलखण्ड में लड़ाई का पर्याय बन गया है।

राजपूतों के जातीय गुण के प्रभाव से **रजपूत** शब्द वीर के अर्थ में प्रयुक्त होने लगा और **रजपूती** तथा **रौताई** भाववाचक संज्ञाएँ वीरता और शान की पर्यायवाची बन गयीं। चन्देल तथा बुन्देला शासनकाल में वीरता पूर्ण कार्यों के उपलक्ष्य में रावत की उपाधि दिये जाने के अनेक प्रमाण मिलते हैं। राजपूत का गुण रजपूती है और रावत का रौताई। तुलसीदास जी ने अयोध्याकाण्ड ३५/६ में इसका प्रयोग किया है :—

> "दानि कहाउब अरु कृपनाई।
> होइ कि खेम कुसल **रौताई**।।"

इसी प्रकार रोब-रुतबा वाले व्यक्ति के लिए **चन्देलो** शब्द का प्रयोग होता है, जो इस भू-भाग में शताब्दियों तक छाये रहे। चन्देली ऐश्वर्य का सूचक है। ब्रिटिश साम्राज्य भी इसी अर्थ में एक शब्द दे गया और वह है—**लाट साब**।

बेला शब्द जिसकी चर्चा पहले हो चुकी है, चन्देलकाल की ही देन है। इसी युग के संस्मरण समेटे हुए दो शब्द और हैं—**माहिल** तथा **जैतखंब**।

उरई-नरेश माहिल परिहार की जगत् विख्यात पिशुनता ने बुन्देली-भाषी-क्षेत्र में हर चुगलखोर को उसका सहनामी बना दिया। वह निर्माण जो घोर संघर्ष का केन्द्र-बिन्दु हो, **जैतखंब** कहा जाता है। यह उस जयस्तम्भ के नाम का अर्थ-विस्तार है जिसके लिए पृथ्वीराज चौहान और आल्हा-ऊदल के बीच अन्तिम निर्णायक युद्ध हुआ था।

बुन्देली शब्द अपने क्षेत्र की ही नहीं, दूरवर्ती स्थानों की भी ऐतिहासिक स्मृतियाँ संचित किये हैं। मेवाड़ के रणथंभोर दुर्ग के लिए मुगल सेना को जो एड़ी-चोटी का पसीना एक करना पड़ा था, उसने बुन्देली में **रथाभौंर** शब्द विकट संघर्ष का वाचक बना दिया है।

उजबक तथा हूण उन विदेशी जातियों के नाम हैं, जो भारत में आक्रमणकारी के रूप में आयीं। स्पष्ट है कि लोकमानस पर इनके व्यवहार ने अच्छी छाप नहीं छोड़ी। इसी कारण **उजबक** तथा **हूण** शब्द अब असभ्य एवं बर्बर के पर्याय बने हुए हैं। जिसका मिजाज ही न मिले, ऐसा घमंडी पुरुष **चकत्ता** और **चकत्तू** कही जाती है। शान के मारे ठीक प्रकार से बात भी न करना **चकत्तयँबो** कहलाता है। इन सबके मूल में मुगल वंश का चग़ताई शब्द है। कविवर भूषण ने औरंगजेब को सीधे चकत्ता ही तो कहा है :—

"चकित **चकत्ता** चौंकि उठै बार-बार

दिल्ली दहसत चितै चाह करषति है।"

अकड़ दिखाने या रोब गालिब करने के अर्थ में **तुर्की झेलबो** मुहावरा प्रयुक्त होता है, जो तुर्क जाति के तेज तर्रारपन की छाप लिये बैठा है।

महाराजा छत्रसाल का हिस्सा पाकर बाजीराव पेशवा के उत्तराधिकारियों ने बुन्देलखण्ड में जो धमा-चौकड़ी मचायी थी, उससे संत्रस्त होकर यहाँ के जनजीवन ने मरहठा शब्द को **मुरहाटौ** तथा **मुरहा** के रूप में अनन्त काल के लिए उपद्रवकारी का पर्यायवाची मान लिया है। अशान्ति और उग्रतामूलक कार्य **जौहर** कहलाता है तथा ऐसा कार्य करनेवाले व्यक्ति के लिए **जौहरिया** विशेषण प्रयुक्त होता है। प्राचीन युद्धों में राजपूतों द्वारा अन्तिम क्षणों में किया जानेवाला जौहर ही इस अर्थ-विकास की पृष्ठभूमि है।

सेना में बजनेवाले आज के बिगुल के स्थान पर इस देश में पहले रणतूर्य का प्रयोग होता था। वही रणतूर्य अब दीन-हीन स्थिति में हरिजन वादकों के पास **रमतूला** नाम से दिन काट रहा है। अपभ्रंशकाल में इसे रणतूरा कहा जाता रहा है। विद्यापति की 'कीर्तिलता' में इसका उल्लेख हुआ है :—

"भेरी काहल ढोल तबल रणतूरा बज्जिय।" (पल्लव ४, पंक्ति १५६)

बाँस की बनी एक प्रकार की गहरे आकार वाली टोकरी जिसमें कोई चार-पाँच किलो अनाज आ जाय **घूका** कहलाती है। लालकवि ने छत्रप्रकाश में शिरस्त्राण के लिए 'घूघ' शब्द का प्रयोग किया है :—

"माथें घूघ लोह की दीनै।" अध्याय २२, दो० ७, चौ० ७।

वस्तुतः घूका की बनावट शिरस्त्राण जैसी ही होती है। उच्चारण-सौकर्य के कारण मध्यकाल में शिरस्त्राण के अर्थ में घूघ और घूका शब्द प्रचलित रहे होंगे।

मुट्ठी अथवा सिर द्वारा सीधा सामने से किया जाने वाला प्रहार **हुरका** कहलाता है। डा० वासुदेव शरण अग्रवाल ने प्राचीन युद्धों में किलों के फाटक और दीवारें तोड़ने में प्रयुक्त Battering ram का समानार्थक हिन्दी में हुड़का शब्द गृहीत किया है। (देखिए कादम्बरी एक सां० अध्ययन, पृ० १३८), जो बहुत ही सटीक है। इन हुड़का तथा हुरका दोनों के मूल में संस्कृत का हुड शब्द है, जिसका अर्थ मेढ़ा होता है। अंग्रेजी शब्द Battering ram में तो मेढ़ा (ram) स्पष्ट ही है। यह ध्यान देने योग्य है कि मेढ़े की एकमात्र प्रहार-पद्धति **हुरका** ही होती है।

अब किलों का युग नहीं रहा अतः उनकी सामग्री से सम्बन्धित शब्द धीरे-धीरे लुप्त हो रहे हैं, किन्तु बबूल आदि के बड़े-बड़े काँटों के लिए **बेलख** या **ब्यालख** शब्द प्रयुक्त होते देखकर आज भी स्मरण हो आता है कि किले के फाटक में आगे की ओर निकले हुए बड़े-बड़े कीलों की संज्ञा भी **बिलखा** रही है।

छत्रसाल के गुरु महात्मा प्राणनाथ ने 'प्रणामी' नाम का सम्प्रदाय चलाया था, जिसमें सदाचार तथा सात्विक खान-पान सम्बन्धी कुछ मर्यादाएँ स्थिर की गयी थीं। आज भोजनादि के विषय में सात्विकता का विशेष ध्यान रखने वाले व्यक्ति को **पन्नामी** कहा जाता है, जो प्रणामी का ही विकसित रूप है।

अतीत में बौद्ध, जैन आदि अवैदिक धर्मों से ब्राह्मणवादी सनातन धर्म का जो संघर्ष चलता रहता है, उसकी साक्षी बुद्धू, नंगा, लुच्चा और पाखण्ड सरीखे शब्द प्रस्तुत करते हैं (कृपया देखें डा० भोलानाथ तिवारी की पुस्तक 'भाषा-विज्ञान' के अर्थादेश तथा अर्थापकर्ष प्रकरण)। बुन्देली-भाषी क्षेत्र में प्रचलित **सपना** तथा **सेंतनाव** शब्द भी इसी प्रसंग में उल्लेखनीय हैं। **सपना** शब्द अश्लील आचरण करनेवाले व्यक्ति के लिए प्रयुक्त होता है। यह मूलतः संस्कृत का क्षपणक है, जिसका अर्थ होता है बौद्ध अथवा जैन श्रमण। वज्रयानियों तथा दिगम्बर, जैन क्षपणकों का जो चित्र कीर्तिवर्मन् चन्देल के राज्यकाल में अभिनीत 'प्रबोध चन्द्रोदय' नाटक में उपस्थित किया गया था, वह

आज के **सपना** शब्द की पूरी-पूरी सार्थकता सिद्ध करता है। हमीरपुर जनपद की कुल पहाड़ तहसील में ग्राम भरवारा के समीप एक प्राचीन जैन मन्दिर में तीर्थंकर शान्तिनाथ स्थापित है, जो **संतनाथ** नाम से प्रसिद्ध है। यह मान्य तीर्थंकर के मूल नाम का बिलकुल विलोमीकरण है, क्योंकि व्यवहार में **संतनाथ** का अर्थ होता है ध्वंसात्मक कार्य करने वाला।

वेदों के घोर निन्दक चार्वाक को लोकजीवन ने अर्थापकर्ष का दण्ड देकर **चरबाक** अथवा **चड़बाक** बना दिया है। अब इस शब्द से किसी दार्शनिक का नहीं, पक्के धूर्त का ही बोध होता है। **किस्टान** शब्द का बुन्देली में अर्थ होता है—भ्रष्ट। स्पष्ट है कि आचार-विचार में स्वयं को श्रेष्ठ माननेवाली हिन्दुत्व-भावना ने ही अंग्रेजी क्रिश्चियन को **किस्टान** बना दिया है। इसी प्रकार **मलच्छ** या **मलच्छो** कहते ही ऐसे व्यक्ति का बोध होता है, जिसका रहन-सहन तथा खान-पान दूषित स्तर का हो। कहने की आवश्यकता नहीं कि म्लेच्छ जनों के प्रति हेय भावना ने ही उक्त शब्दों में अपनी प्रखरता अंकित कर दी है।

फारसी का एक शब्द है मलंग। इसका अर्थ होता है आजाद फकीर अथवा निश्चिन्त व्यक्ति। परन्तु बुन्देली में **मलंग** अथवा **मलंगा** विशेषण बन-कर कुछ हेयार्थ में, मोटे-ताजे व्यक्ति के लिए प्रयुक्त होता है और किसी निस्पृह सन्त के बजाय मौज-मस्ती के साथ गृहस्थों के यहाँ माल छकनेवाले साधु-बाबाओं का यह चित्र उपस्थित करता है :—

'परें पराई पौर में, बनी-बनाई खाँय।
रिन-धन की खटका नहीं, काए खें दुबरायँ ?'

सत्यानाशी (Argemene Mexicana) नाम से प्रसिद्ध कँटीले पौधे का बीज भारत में मेक्सिको से एक मालवाहक जहाज के मध्यम से आया। ऐसा प्रतीत होता है कि देश में इसका प्रचार बंगाल की ओर से हुआ। बुन्देली में इसका **बंग कटाई** नाम यही सिद्ध करता है। पुंश्चली स्त्रियों को **बंग** अथवा **बंगालिन** कहा जाता है, जिसके पीछे यह पुराना लोक-विश्वास है कि बंगाल की स्त्रियाँ जादू जानती हैं और वे बाहरी पुरुषों को वशीभूत कर लेती हैं।

हरयाना प्रदेश का प्राचीन नाम **बाँगर** है। लोक भाषा बुन्देली में जो लोच और लालित्य है उसकी तुलना में बाँगर क्षेत्र की बोली में कर्कशता और खड़ापन ही अधिक है। यही कारण है कि यहाँ **बाँगरू, बाँगड़ू** अथवा **बाँगड़ूस** शब्द अक्खड़-खजड्डू के पर्यायवाची बन गये हैं।

महाजनी-व्यवहार में सर्राफ लोगों की साख पुरानी है। इसी ने **सराफ** शब्द को सच्चे और ईमानदार का वाचक बना दिया है। कुछ शब्दों ने विशिष्ट जातियों के गुणों की छाप लेकर अपना अर्थ-विस्तार कर लिया है। **गहोई, खंकड़, बागड़िया** तथा **धाकड़** अथवा **धगड़ी** शब्द इसी प्रकार के हैं। जन-सामान्य के बीच गहोई का अर्थ होता है—गम्भीर व्यक्ति, जबकि यह वैश्यों की एक उपजाति का नाम है। कट्टर के अर्थ में **खंकड़** और साहसी के अर्थ में **धाकड़** अथवा **धगड़ी** शब्द प्रयुक्त होते हैं। **खंकड़** का सम्बन्ध गक्खड़ नामक वीर जाति से है, जो पंजाब में निवास करती है। धाकर भी राजस्थान की एक जाति है जिसके सम्बन्ध में वहाँ की एक कहावत है :—

'बामण को धन सबोड़ा में, धाकड़ को धन लपोड़ा में।'
(देखिए 'मेवाड़ की कहावतें' भाग १, लेखक श्री लक्ष्मीलाल जोशी)

अर्थात् ब्राह्मण का धन खाने-पीने में और धाकर का धन लड़ाई-झगड़े में व्यय होता है।

आवारागर्दी करने वाले को **बागड़िया** कहा जाता है। स्मरणीय है कि मूलतः यह एक अपराधी जनजाति का नाम है, जिस पर नियंत्रण रखने के लिए ही प्रारम्भ में मुंगावली (म० प्र०) की खुली जेल स्थापित की गयी थी।

हिन्दी विभाग, ब्रह्मानन्द महाविद्यालय राठ (हमीरपुर), उ० प्र०

संतुलन | ● अवध विहारी गुप्त

खोये हुए संतुलन को पाने के लिए
चेतना के शंख बजाये गये
हर्षभरी ध्वनि में शहनाई ने अपना फर्ज अदा किया
भोर के शोर के साथ कवि ने कविता लिखी
पाठकों ने दिलचस्पी से पढ़ी
लेकिन मनोदशा के पोलियोग्रस्त शिशु
धूप-उपचार की रागात्मक ऊष्मा के सम्बल में बँधकर
गतिमयता के उपक्रम में
अपना रिहर्सल करते रहे, करते रहे
किसी स्ट्रेचर में बाँधे पैर उछलते रहे, उछलते रहे।

—दुर्गा बाजार, बन्योटा, बाँदा, उ० प्र०

बुंदेलखण्ड का विचित्र औषधागार सागौनी

• स्वामी प्रसाद मिश्र

अब से लगभग ३२ वर्ष पूर्व मैं शासकीय कार्य से पन्ना जिला अन्तर्गत ग्राम रैपुरा में प्रवास पर था। आश्विन माह था, मुझे मलेरिया ने धर दबोचा। उस समय वहाँ कोई व्यवस्थित अस्पताल तो था नहीं, एक मात्र कम्पाउण्डर से ही काम चल रहा था। उन्होंने मुझे कुनैन अथवा उससे निर्मित कोई दवा दी। बुखार चन्दरोज में ठीक हो गया। मैंने वहाँ से अपने गन्तव्य स्थान पवई को अपने एक मात्र अर्दली के साथ पैदल प्रस्थान किया। रैपुरा से लगभग पांच मील दूरी पर ग्राम बधवार पड़ता था। वहाँ श्री शंकर प्रसाद नाम के एक ख्याति प्राप्त तांत्रिक रहा करते थे। मैं जब भी उस क्षेत्र की तरफ जाया करता था, वे बहुधा मुझसे मिलने आ जाया करते थे। वे मधुर स्वभाव थे और स्नेही थे। कई बार मुझे अभ्यर्थना के लिये आमंत्रित कर चुके थे। उनसे मिलने का मोह तथा रात्रि विश्राम के लिये बधवार में रुक गया, पर तांत्रिक जी प्रवास पर होने से भेंट नहीं हो सकी। दूसरे दिन सवेरे मैं व साथी अर्दली श्री भगवत दीन बधवार से चल दिये। रास्ते में चलते-चलते सूर्य भगवान काफी चढ़ आये थे और अपने प्रखर रश्मियों को बिखरते हुए छिति-मंडल को अपने तेज से तप्त करते जाते थे। मेरी दशा कुछ विचित्र सी होती जाती थी। मुझे प्रतीत होता था कि मैं आसमान की ओर खिंच रहा हूँ। चेतना विचित्रता लिये मतिष्क को कुरेदने लगी। इसी दशा में किसी प्रकार पाँच-छः मील की यात्रा पूरी करने पर लगभग दोपहर ग्राम सागौनी पहुँचा। मेरी बिगड़ती हालत पर अर्दली भगवतदीन परेशान था। ग्रामवासी जुड़ आये, मेरे ठहरने की व्यवस्था की। उन लोगों का ख्याल था कि शायद रात्रि को तांत्रिक के गांव में ठहरने से मुझे कोई बाधा लग गई है और ग्राम के गुनिया मेरी झाड़-फूक करने लगे। मगर मेरी दशा में कोई सुधार के लक्षण न पाने पर उन्हीं में कोई जाकर गेरुआवस्त्र धारी साधु को लिवा लाया, जो इस क्षेत्र में ब्रह्मचारी जी के नाम से जाने जाते थे। उन्होंने मेरी नब्ज पर उंगलियाँ रक्खी, ठीक हो जाने का आश्वासन देते हुए कहा कि कुनैन का रिएक्सन है। अपनी पेटी से एक पुड़िया दवा दी और आराम करने को कहा।

मुझे नींद आ गई और दो तीन घण्टे आराम से सोया। जागने पर मुझे अपने में सुधार मालूम हुआ। शाम को ब्रह्मचारी जी मुझे बस्ती से बाहर एक झरने पर लिवा गये, वहाँ हम लोगों ने स्नान किये। रात्रि को फिर एक खुराक दवा दी और सुबह मैं पूर्णरूपेण अपनी सहज अवस्था में आ गया। मैंने ब्रह्मचारी जी का आभार माना। उत्सुकतावश मैंने उनका नाम, ग्राम आदि की जानकारी लेते हुये उनसे इस क्षेत्र में उनके निवास-स्थान तथा यहाँ निवास करने का आकर्षण-बिन्दु क्या है, जानना चाहा।

ब्रह्मचारी जी ने अपने को रेवाड़ी (दिल्ली) का रहने वाला तथा आयुर्वेदाचार्य होना बतलाते हुए कहा कि वे विन्ध्य-क्षेत्र में औषधि-उपयोगी जड़ी बूटियों की खोज में हैं। और विन्ध्य क्षेत्र के जंगलों में खोज करते फिर रहे थे कि उन्हें एक जन श्रुति मिली थी कि इस सागौनी में काले व भूरे रंग के सांप बहुत निकलते हैं, जिनको इस ग्राम की ललनायें टोकरियों या सूपों में उठाकर ग्राम के बाहर एक बेहर में छोड़ आती हैं। उनको इनसे कोई भय नहीं लगता। यहाँ के नाग कभी किसी को डसते नहीं और कभी-कभी कुपित नाग यदि किसी को डस ही लेता है, तो यहाँ के लोग कोई दवा नहीं कराते। उनका ख्याल है कि दवा कराने या झाड़-फूक कराने से नाग देवता नाराज हो जाते हैं। बस गाँव के बाहर बेहर में नागबाबा को दवेलियों में दूध भरके रख आते, मन्नतें मनाते हैं, नारियल फोड़ते हैं और ठीक बने रहते हैं। नाग के काटने से किसी मनुष्य या पशु की मृत्यु नहीं होती, ब्रह्मचारी जी बोले कि यही विचित्र व आश्चर्य चकित करने वाला जनश्रुति उनको इस स्थान पर रुकने का आकर्षण बनी और ब्रह्मचारी जी को लगा कि इस विशेष प्रभाग में ऐसी कोई जड़ी-बूटी होना चाहिए, जो इस क्षेत्र विशेष में पाये जाने वाले काले नागों के विष को निर्मूल या प्रभावहीन करती हैं। ब्रह्मचारी जी ने बतलाया कि जो भूरे रंग के सर्प यहाँ पाये जाते हैं, वे वास्तव में काले नाग ही प्रतीत होते हैं, जो बड़ी आयु के कारण भूरे से दिखते हैं। उन्होंने यह भी बतलाया कि साधारणतया काले नाग की आयु एक हजार वर्ष तक की होती है। ब्रह्मचारी जी के उस समय तक कई ऐसी जड़ी-बूटियाँ प्राप्त हो चुकी थी, जिनसे सर्पदंश का विष प्रभावहीन हो जाता है। पर वे उस समय यह निश्चय पूर्वक नहीं कह सकते थे कि उन्हीं जड़ी-बूटियों के कारण वहाँ के सर्पों का विषहरण होता रहता है अथवा वे विष से (एम्यून) रहित हो गये हैं। वे यहाँ की जड़ी बूटियों को परीक्षण के लिये अपनी प्रयोगशाला भेजते रहते थे।

मैं कार्यवश हाल में अपने कुछ पुराने कागज-पत्र पलट रहा था कि मुझे मेरे वह दो चार पेज हाथ लगे, जिनमें ब्रह्मचारी जी से उस क्षेत्र में प्राप्त होने वाली जड़ी बूटियों का लेख मैंने कभी बत्तीस वर्ष पूर्व लिख लिया था। ब्रह्मचारी जी ने बतलाया था कि इस भू-भाग में उन्हें कुछ ऐसी जड़ी-बूटियाँ भी मिली, जो उनको हिमालय या काश्मीर तरफ नहीं प्राप्त हुई। इस जानकारी को प्रकाशित न करना मैं अपने आप में अब अपराध मानता हूँ।

ग्राम सागौनी की स्थिति—कटनी-बीना रेलवे लाइन पर कटनी से शायद तीसरी स्टेशन सलैया है। वहाँ से लगभग १६ मील पश्चिम तरफ यह छोटा ग्राम जंगल में बसा है। अब आने-जाने की सरल सुविधा हो गई है। उस समय इस ग्राम मे ८ घर गौंडों के, ३ घर भूमियों के और एक घर ठाकुर का था। ठाकुर फौत हो गया था, उसके दो छोटे-छोटे बच्चे थे। एक छोटा सा तालाब था, जिसके पास पत्थर के चीरा पड़े थे, उनकी आकृति से वे चन्देली काल के पत्थर मालूम होते थे। गांव के बाहर पूर्व-दाक्षिण तरफ जहाँ से मौजा गंज को रास्ता जाता है, एक छोटी सी बेहर है, जो मिट्टी से पुरी हुई थी। नामो निशान को पुराने चूना पत्थर से बने कुछ कँगूरे अथवा पट्टी मात्र अब शेष जमीन से कुछ उठे हुए दिखाई दे रहे थे। इसी बेहर में ग्रामवासी नागबाबा को अपनी टोकनियों में धर के छोड़ आया करते थे। इसके बाद आगे वृक्षादित कुछ समतल भूमि है और कुछ आगे पुरानी बस्ती के कुछ खण्डहर भी थे, जिनके अवशेष पक्के चूना पत्थर के बने थे। ये अपनी पुरातनता में अतीत को छिपाये खड़े थे। इसके बाद वह पहाड़ी है, जिसे ब्रह्मचारी जी औषधागार कहते थे। इस पहाड़ी पर अथवा आस-पास औषधोपयोगी जो जड़ी बूटियाँ पाई गई, ब्रह्मचारी जी ने बतलाई, उनका विवरण आगे दिया जा रहा है।

ग्राम वासी बहुत ही सरल स्वभाव और सज्जन थे। मकान अधिकतर कच्चे मिट्टी के अथवा वांस के टट्र बनाकर उन पर मिट्टी गोबार पोतकर जमीन पर खड़े करके बनाये गये थे। साफ-सुथरे गोबर मिट्टी से लिये पुते थे। उस समय शिक्षा के नाम पर वहाँ शून्यता थी, पर उनका सद्-व्यवहार, आतिथ्य-सत्कार से मैथिलीशरण गुप्त की पंक्तियाँ अक्षरशः साकार हो उठती थी। उनका सादा जीवन गोधन के दूध, घी, मट्ठा और मामूली काश्त पर आश्रित था।

ब्रह्मचारी जी ने यहां की पहाड़ी पर पाई जाने वाली जड़ी बूटियों के संदर्भ में अपना एक रोचक अनुभव सुनाया। किसी एक रात्रि वे पहाड़ी

तरफ ही घूम रहे थे कि उन्हें झाड़ियों में कुछ चमकती हुई रोशनी दिखाई पड़ी। उन्होंने समझा शायद मणियारे नाग बाबा अपनी मणि निकाल कर आस-पास विचर रहे हैं। ऐसा कहा जाता है कि मणिधारी सर्प रात्रि में अपने अन्दर से मणि निकाल कर बाहर रख देता है और उसके प्रकाश में चरने अर्थात भोजन की खोज में रहता है। ब्रह्मचारी जी नागमणि प्राप्त करने की आशा में अपने पदचाप दबाते हुये उस स्थान तक गये, पर उन्हें वहाँ न तो नाग बाबा के दर्शन हुये और न ही नागमणि। वहाँ एक पौधा मात्र था, जिसकी पत्तियों से प्रकाश फूट रहा था। उन्होंने उस पौधे को उखाड़ लिया और बतलाया कि उसके प्रकाश में साधारण छापा की रामायण अंधेरे में पढ़ी जा सकती थी। पौधे के सूखने पर प्रकाश नहीं रहता था। इस पौधे को उन्होंने परीक्षण हेतु अपनी प्रयोगशाला भेज दिया था।

सागौनी पहाड़ में पाई जाने वाली औषधि उपयोगी जड़ी बूटियाँ जो उस समय तक ब्रह्मचारी जी को मिली थी, निम्नलिखित बतलाई गई—(१) सर्पगंधा (२) सतावर, (३) मूसली स्याह सफेद, (४) असगंध, (५) चितावर, (६) भारंगी, (७) पौहकरमूर, (८) विजयसार, (९) मैदा, (१०) महा मैदा (११) आमी हल्दी, (१२) बिलारी कांद, (१३) बिलाईकांद (१४) दस मूल की सब जड़ियाँ अर्थात छोटा वलारा, बड़ावलारा (सल्पारनी) विष्टपारनी, भिजरा (बड़ी कटाई) छोटी कटाई, ऐल की जड़ वेल, खमेर, सोना पाड़, पाड़, गुखरू, (१५) किरवारा, (१६) वायबिरंग, (१७) नागकेसर, (१८) विधारा, (१९) कामराज, (२०) भोजराज, (२१) वराहीकंद, (२२) दूधिया कंद, (२३) वारह कन्ता, (२४) द्रोण पुष्पी, (२५) चन्द पुष्पी, (२६) रतन जोत, (२७) गुलखैरा, (२८) गुलबनपसा, (२९) भूमी आंवला, (३०) नाग वल्लर्भा, (३१) नाग लता, (३२) पालिया बूटी, (३३) बड़ा काद, (३४) रेणुका समालू, (३५) रेने गुन्डी, (३६) निरगुन्डी, (३७) ब्रह्म दण्डी, (३८) रूद्रवन्ती, (३९) मोर सखा, (४०) पारनी, पांचों मुग्ध पारनी, मग्ध पारनी, पारनी, सलपारनी, विष्ट पारनी, (४१) ताल मखाना, (४२) बीजवन्त (खरेटी) (४३) अपराजिता सेत व नीला, (४४) इन्द्रायन, (४५) हाथा जोड़ी (यह कम मिलती है) (४६) पथरचटी (स्वेत व नीला) पाषाण भेद, (४७) लता कस्तूरी, (४८) सहदई, (४९) रतन जोत, (५०) निरमली (५१) समुद्र सोख (समुद्र फल) (५२) कलहारी, (जहर), (५३) कालेसर, (५४) काली पाड़, (५५) छोटी करई, (५६) बड़ी करई, (५७) कडुवा जीरा, (५८) स्याह जीरा, (५९) चिरायता, (६०) बनजीर, (६१) बायजुरू, (६२) सनाय,

(६३) पसारन, (६४) गंध पसारन, (६५) देवदार, (६६) करंज, (६७) लता करंज, (६८) गंध करंज (गटान), (६९) विष्णु कान्ता, (७०) हाथी सुन्डी, (७१) हाऊ बैर, (७२) नीम (चारों पानी) महानीम, (७४) बकाननीम, (७५) मीठी नीम, (७६) अमर बैत (खदुआ), (७७) कचूर, (७८) इन्द्र जौ (कुड़ें के फल) (७९) सेमर (मचरस) (८०) काली केसर (बकानीम का फूल) (८१) अनन्त मूल, (८२) सहस्र मूल, (८३) नेत्र बाला, (८४) गेर बैठका, (८५) ब्रण पंचक काष्ठ, कुशा; बराही, डाम, राममिर, (८६) रूसा, (८७) छिरौटा, (८८) काक गधा, (८९) काक सुन्डी, (९०) किश्मार (९१) गोरख गांजा (यह गांजा की तरह नशा देता है) काश्मीर में नहीं मिलता, (९२) अष्ट वर्ग (मैदा, महा मैदा, जीवका, सतावर मिलती है बांकी रिद्धी, रिखम नहीं मिलती), (९३) सुगन्ध तिरंग (गंध देने वाला घास), (९४) गंध तिरंग, (९५) लाजवन्ती, (९६) हुडहुड सूरज मुखी, (९७) महिमन (९८) सरफोका, (९९) कालेसर, (१००) सहदेई, (१०१) भूत केशी जटामासी, (१०२) जयन्ती अजय पाल (दन्ती जकाल गोटा), (१०३) आरामार्ग (औंगा) (१०४) घमासा, (१०५) जवासा, (१०६) खीर कंकोली, (१०७) कंकोरी (खमेर वृक्ष), (१०८) जखम पान, (१०९) विधारा मूल, (११०) प्रियंगू (मिहदी का फूल) चिरायता का फूल, धौर का फूल (१११) चिकनी बूटी, (११२) वन गोभी, (११३) लक्ष्मना बूटी (११४) लक्ष्मना कंद, (११५) लहसुनियाँ, (११६) नागबूटी, (११७) बमूर पंचांग (यानी बमूर की जड़, छाल, पत्ती, फूल काटें)।

कुछ जड़ी-बूटियों के नाम जो सर्प दंश, गुहेरा, बिच्छु के जहर निवारक है :

सर्प दंश पर (९०) क्रमाक विलार इसे दीपावली को जगाकर रखते हैं। क्रम ९९, कालेसर।

बिच्छु डंक के जहर की दवा—क्रम ११५ लहसुनियां (इसके रंग में बिच्छु मार कर डाल देवें तो बिच्छु गल जाता है फिर एक सीक से डंक लगने की जगह लगा देवें।

गुहेरा काटने पर जहर नाशक—क्रम ८७ छिरोटा।

अन्य जड़ी बूटियों के प्रयोग विभिन्न रोगों के लिये ब्रह्मचारी जी ने बतलाये थे, उनमें विशेष उल्लेखनीय नागबूटी क्रम ११६ का है, जिसके लिये उन्होंने बतलाया था कि गर्भ में बच्चा चाहे मरा हुआ हो अथवा जिन्दा, इसका काढ़ा बनाकर पिलाने से बच्चा पेट से निकल आता है।

ब्रह्मचारी जी ने विन्ध्य के अन्य वन्य स्थलों में औषधि उपयोगी जड़ी-बूटियों का पाया जाना बतलाया, जिनमें विशेष उल्लेखनीय ग्राम सड़वा के पास पांडाझिर तथा सेंदवा की पहाड़ियों के पास की झिरियां जहाँ पहाड़ से पानी गिरता है। यहाँ बनमूली उपलब्ध है, जिसकी पत्तियों, गदेली पर रख कर मलते जाने से और उस पर पारा डालते जाने से पारा शरीर के अन्दर प्रविष्ट हो जाता है। पारा शरीर में रखने से ताकत देता है, नुकसान नहीं करता, ऐसा ब्रह्मचारी जी का कहना था। फिर जब कभी पारा शरीर से निकलता है, तो उन्हीं स्थानों पर बन तुलसी के पौधे प्राप्त है, बन तुलसी के पत्तों को गदेली पर रखकर मलते जाने से शरीर में प्रविष्ट पारा बाहर निकल आता है।

उपरोक्त के अलावा ब्रह्मचारी जी ने इस क्षेत्र के कुछ स्थानों के पानी की भी रसायनिक उपयोगिता बतलाई। उनके अनुसार सड़वा के पास पांडाझिर का पानी, वृहस्पत कुंड और अनसुइया का पानी बेधक है।

विन्ध्य क्षेत्र में औषधि उपयोगी अनेक जड़ी-बूटियाँ पाई जाती है। इस ओर अभी तक वनस्पतिशास्त्रवेत्ताओं का ध्यान नहीं गया है। इस क्षेत्र से सिर्फ ईंधन और इमारती लकड़ी तक ही सीमित है। इस दिशा में प्रयास और परीक्षण अपेक्षणीय है।

—गल्ला मन्डी, छत्तरपुर, म० प्र०

———

त्रिपुरी के प्राचीन इतिहास पर नया प्रकाश

● जीतेन्द्रनाथ सिंह

आधुनिक करणबेल नामक स्थान ही प्राचीन त्रिपुरी है, यह मध्यप्रदेश के जबलपुर से १० कि० मी० पश्चिम की ओर स्थित है।[१] प्राचीन काल में करणबेल, करणवटी नामक नगरी के रूप में प्रसिद्ध थी। वर्तमान में इसकी समता तेवर नामक छोटे से गांव से की जाती है। यह गांव २५, २५ उत्तरी अक्षांश तथा ८२, २२ पूर्वी देशान्तर पर स्थित है।[२] तेवर तथा उसके आस-पास का क्षेत्र प्राचीन त्रिपुरी है। उत्तर में नर्मदा नदी, पश्चिम तथा दक्षिण की ओर नर्मदा की सहायक नदी बाणगंगा इस क्षेत्र की सीमा बनाती है।

समय-समय पर विद्वानों तथा शोध संस्थाओं द्वारा किए गए सर्वेक्षणों तथा पुरातात्विक उत्खननों के फलस्वरूप त्रिपुरी के प्रचीन इतिहास पर यथेष्ट प्रकाश पड़ा है। पुरापाषाण युग के वृहद् जीवाश्म तथा पत्थरों के औजार प्राप्त हुए हैं। इसमें हाथ की कुल्हाड़ियां, विदारिणयां एवं गड़ासे विशेष महत्व के हैं।[३] मध्य पाषाणयुगीन औजारों में चकमक तथा सूर्यकान्त की खुरचनियां तथा उत्तर पाषाणकालीन बारीक छुरियां, खुरचनियां गार, चकमक तथा सूर्यकान्त आदि प्राप्त हुए हैं।[४] नवीन पाषाण युग के पांच पाषाणस्त्रों में लाल बलुए पत्थर से बने अर्धवृत्ताकार अस्त्र पर पालसहित नाव एवं मछली बनी हुई है।[५] उत्खनन से प्राप्त प्राचीनतम अवशेष ताम्राश्म युगीन है, इस काल के पत्थर के हथियार तथा मृदभाण्ड प्राप्त हुए हैं।[६] डा० सांकलिया त्रिपुरी की प्राचीनता लौहयुगीन मानते हैं।[७]

---

१. जी कनिंघम, आर्किअलाजिकल सर्वे रिपोर्ट खण्ड ९
२. मध्यप्रदेश डिस्ट्रिक्ट गजेटियर, जबलपुर (१९६८), पृ० ६९४
३. इण्डियन आर्कियालाजी-ए रिव्यु १९६०-६१, पृ० १५-६०
   एम० जी० दीक्षित, मध्यप्रदेश पुरातत्व की रूपरेखा, पृ० ३७
४. त्रिपुरी एक्सकेवेशन १९६६-शार्ट रिपोर्ट एण्ड एग्जिबीशन, पृ० ३-४
५. इण्डियन आर्किआलाजी, ए रिव्यु, १९५८-५९, पृ० ७२, १९६३-६४, पृ० ८८ दीक्षित, पूर्वोक्त, पृ० ३९
६. एम० जी० दीक्षित, त्रिपुरी, १९५२, पृ० ३९
७. एच० डी० सांकलिय : म० प्र० इतिहास परिषद पत्रिका, अंक ५ (१९६०), पृ० ५८

उत्तरवैदिक काल के पश्चात् कुछ शताब्दियों तक त्रिपुरी का इतिहास बहुत कम ज्ञात है। प्राचीन साहित्य, अभिलेखों एवं उत्खनों से प्राप्त सामग्री के आधार पर मौर्य-कलीन एवं उसके उत्तरवर्ती राजनीतिक इतिहास की क्रमबद्ध जानकारी मिलती है। मत्स्य पुराण में इसका उल्लेख आसरी नगरी के रूप में हुआ है।[१] बौद्ध ग्रंथों में चेदि जनपद का उल्लेख मिलता है जो, प्राचीन भारत के १६ महाजनपदों में से एक था।[२] त्रिपुरी से ५६ कि० मी० दूर, जबलपुर जिले के रूपनाथ नामक स्थान से अशोक के गौण शिलालेख की एक प्रति प्राप्त हुई है,[३] जिसमे स्पष्ट है कि त्रिपुरी मौर्य साम्राज्य के अंतर्गत थी। उत्खनन से त्रिपुरी से, उत्तरी काले ओपदार, मृद्भाण्ड तथा कापर के आकृत सिक्के पर्याप्त संख्या में प्राप्त हुए हैं। यह मौर्य काल के माने जाते हैं।[४]

ई० पू० २२६ के लगभग अशोक के मृत्योपरान्त उसके अयोग्य तथा निर्बल उत्तराधिकारी विस्तृत मौर्य साम्राज्य को संभालने में असमर्थ सिद्ध हुए। इनकी दुरावस्था का लाभ उठाकर अन्तिम मौर्य सम्राट वृद्धद्रथ की हत्या उसके ब्राह्मण सेगपतिपुष्पमित्रशुङ्ग ने की। इस स्थिति का लाभ उठाकर मौर्य साम्राज्य के अधीन कुछ प्रमुख नगरों अथवा जनपदों ने अपनी स्वतंत्रता घोषित कर दी, जिसमें त्रिपुरी भी सम्मिलित थी। इस समय के जनपदीय सिक्के बड़ी संख्या में प्राप्त हुए हैं जिस पर ब्राह्मी लिपि नगर का प्राकृत में नाम 'त्रिपुरी' उत्कीर्ण है।[५]

त्रिपुरी जनपद की स्वतंत्रता अधिक दिनों तक न रह सकी। ई० पू० प्रथम शताब्दी के मध्य यह सातवाहनों के साम्राज्य में सम्मिलित हो गई। भेड़ाघाट से उत्खनन से सातवाहनों के सिक्के बड़ी मात्रा में प्राप्त हुए हैं जिससे इस वंश के इतिहास पर महत्वपूर्ण प्रकाश पड़ता है।[६] त्रिपुरी सात-

---

१. मतस्य पुराण, अ १२९-१४०
२. अगुत्तर नियास (पी० टी० एल०), पृ० ३५५
३. हल्स, इंसक्रिप्शन आफ अशोक, कार्पस इस क्रिपशन्स इण्डिकेल, पृ० १६६-१६७
४. कैटलाग आफ दि क्वाइन्स आफ ऐंश्यन्ट इण्डिया, प्रस्तावना, पृ० ८०
   एम० जी० दीक्षित, त्रिपुरी–१९५२, पृ० २, १८-२२, १२२-१२३
५. जर्नल आफ न्यूमिसमेटिक सोसायटी आफ इण्डिया, जि० २१, पृ० १८६-८७, फलक पूर्वोक्त, पृ० ११०-११, फलक ६
६. के० डी० वाजपेयी : इण्डियन न्यूमिसमेटिक स्टडीज, पृ० ११४

वाहनों के अधीन कब तक बनी रही, इसके सम्बन्ध में कोई ठोस प्रमाण उपलब्ध नहीं है। सातवाहनों का सबसे अंतिम सिक्का गौतमीपुत्र यशश्री सातकर्णि का है। अतः द्वितीय शताब्दी ई० के अंत में त्रिपुरी इसके अधीन थी। डा० अजय मिश्र शास्त्री, भेड़ाघाट से प्राप्त कुषाणकालीन प्रतिमाओं के आधार पर यह संभावना व्यक्त करते हैं कि सातकर्णि (प्रथम अथवा द्वितीय) तथा श्रीयज्ञ के अन्तराल में इस वंश के शक्ति के ह्रास तथा राजनैतिक दुर्बलताओं का लाभ उठाकर कुछ अन्य राजवंशों ने त्रिपुरी को अपने अधीन कर लिया होगा।[1]

सातवाहनों के पश्चात् ई० तृतीय शताब्दी में बोधिवंश के राजाओं ने त्रिपुरी क्षेत्र पर अपना आधिपत्य स्थापित किया। सागर विश्वविद्यालय द्वारा किए गए बड़े पैमाने पर उत्खनन के फलस्वरूप इस वंश के इतिहास पर नवीन प्रकाश पड़ा है। इस काल के स्तरों से सिक्के, मुहरें तथा मृणमुद्राएं प्राप्त हुई है जिन पर बोधिवंश के ५ राजाओं श्री बोधि, वसुबोधि, शिवबोधि, चन्द्रबोधि तथा धर्मबोधि का नाम ब्राह्मी लिपि में उत्कीर्ण है।[2] इनकी शासकीय उपाधि महाराजा है। इनके सिक्के भी सातवाहनों की भांति मातृपरक प्रधान है, किन्तु प्रमाणों के अभाव में इनके कालक्रम के बारे में कोई जानकारी नहीं मिलती है। उत्खनन से प्राप्त एक मृणमुद्रा विशेष उल्लेखनीय है। इस पर चौथी शताब्दी की ब्राह्मी लिपि में सिंहसेन पौत्र वितिकयस्कन्दस्य पुत्रस्य महासेनास्य, आलेख उत्कीर्ण है।[3] संभवतः यह तीसरी शताब्दी के मध्य में त्रिपुरी पर शासन किया होगा। परन्तु शासकीय उपाधि तथा अन्य प्रमाणों के अभाव में कुछ भी कहना संभव नहीं।

चौथी शताब्दी के मध्य त्रिपुरी गुप्तों के अधीन हो गई। प्रयाग प्रशस्ति के अनुसार समुद्रगुप्त ने अपने द्विग्विजय अभियान में समस्त आटविक राज्यों पर अधिकार कर लिया जिसके अन्तर्गत त्रिपुरी भी थी। परिव्राजक महाराजा संक्षोभ बैतुल ताम्रपत्र (गु सं० १९९, ५१८-१९ ई०) लेख में त्रिपुरी का उल्लेख एक विषय अथवा जिला के रूप में हुआ है। यह डाहल प्रान्त अथवा भुक्ति का एक विषय था।[4] समुद्रगुप्त की प्रयाग प्रशस्ति की भाषा से स्पष्ट है कि गुप्त वंश की अधीनता स्वीकार करने पर उन्हें अपने अधीन उस क्षेत्र पर राज्य करने की अनुमति प्रदान की होगी।[5]

१. अजय मिश्र शास्त्री : त्रिपुरी, पृ० २७
२. के० डी० वाजपेय : इण्डियन न्यूमिसमेटिक एटडीज, पृ० १६४-१६६
३. इण्डियन आर्कियालाजिकल रिव्यु, १९६८
४. फलीट, गुप्त इन्सक्रिप्सन, पृ० ११३-११४
५. इंपिग्राफिया इण्डिका, जि० ८, पृ० २८४-८८

छठीं शताब्दी से लेकर कलचुरियों की राजधानी बनने तक त्रिपुरी का इतिहास बहुत कम ज्ञात है। डा० शास्त्री संभावना व्यक्त किए हैं कि इस प्रदेश के कुछ भाग पर कोशल के पाण्डुवंशी राजाओं का आधिपत्य रहा होगा।[1] निश्चित प्रमाणों के अभाव में कुछ भी कहना समीचीन नहीं होगा।

आठवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में चेदि पर कलचुरियों का अधिकार हुआ। त्रिपुरी इसकी राजधानी बनी। यह काल त्रिपुरी के इतिहास का 'स्वर्ण काल' था। इस काल में त्रिपुरी की असाधारण उन्नति हुई। त्रिपुरी की राजधानी के रूप में उल्लेख सर्वप्रथम त्रिपुरी शाखा के कलचुरि नरेश युवराज देव द्वितीय के संदर्भ में हुआ है, परन्तु रतनपुर के कलचुरी नरेशों के अनेक अभिलेखों से ज्ञात होता है कि इसके कई पीढ़ी पूर्व त्रिपुरी डाहल के कलचुरियों की राजधानी के रूप में विद्यमान थी।[2] त्रिपुरी का नाम चेदिनगरी तथा चेदि कुल राजधानी से विभूषित हुआ। इस वंश के अनेक महान शासक हुए, जो केवल विजेता ही नहीं अपितु कुशल प्रशासक, दानवीर, साहित्यकार तथा निर्माणकर्ता के रूप में अपने समकालीनों से बढ़-चढ़ कर थे। इनके समय में त्रिपुरी की सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक तथा कला व शिल्प में बहुत अधिक उन्नति हुई।

इस भांति प्रागैतिहासिक काल से लेकर कलचुरिकाल (१२०० ई०) तक त्रिपुरी का प्राचीन इतिहास प्राप्त होता है। कालान्तर में अन्य महत्वपूर्ण नगरों की भांति त्रिपुरी भी परवर्ती शासकों का उपेक्षा का शिकार बन गई इसके प्राचीन अवशेष अपने गौरवशाली इतिहास के स्मृतिमात्र बनकर रह गए।

—शोधछात्र, प्राचीन भारतीय इतिहास, संस्कृति
एवं पुरातत्व, सागर विश्वविद्यालय

१. अजय मिश्र शास्त्री : त्रिपुरी, पृ० ३३
२. इन्सक्रिप्सन्स आफ कलचुरि चेदि एरा, पृ० २९३, ३२७, ४०५।

पुल पर ठहरा समय

• प्रहलाद तिवारी

पुल पर ठहरा समय, पानी पर फेंके पत्थरों की लकीरों सा
लहरों को वाचाल बनाता है
जो कभी पैशाचिक मुद्रा में शब्दहीन खड़ा था मेरे सामने
अजीब इत्तफाक है कि मैं पुल पर रोज गुजरता हूँ
पानी और रेत के अन्तर्द्वन्द्व को पहचानकर भी
उससे जुड़ नहीं पाता,
मेरी कविता के शब्दों में सजा नहीं पाया
उसकी संजीदगी और सफेद फेनों को उसने उगल दिये
रात की दुर्घटना में–क्या यह जरूरी वाक्या नहीं था
जिससे मैंने आंखें मूंद ली थीं और टहलने के लिए
पैरों को डुबाया था उसके गहराई में,
उसकी अवस्थिति, उपस्थिति खूंखार जानकर भी
रेलिंग को समाचार पत्रों की तरह इस्तेमाल करता हुआ
लौट आया था देशज शहर में,
बिना आहट के उसकी पैशाचिक मुद्रा को बर्फ की तरह
गलते देखा था देर तक—
शब्दहीन हवा के बीच उसका परीक्षण किया था
उसकी हवा का वही तूफानी रूपान्तरण
दांत में जीभ की जगह बुरी तरह फंस गया था—
कंगूरेदार, नुकीले सिरे मेरी आंतों में धंस रहे थे बुरी तरह
मैं अभी तक, भी समय के इन्तजार में पुल पर
खड़ा था देर तक।

—११८, रूपराम नगर कालोनी, इन्दौर, म० प्र०

कहानी—

बहुत देर कर दी

•

—ए० के० 'उर्मिल'

अलबम के अन्दर चित्रकी तस्वीरों को देखने एवं क्रमश पृष्ठ पलटने का क्रम जारी था। अचानक मेरी नजरें एक तस्वीर से चिपक जाती हैं। आखिरी पृष्ठ है यह अलबम का जिस पर अमित की तस्वीर चपकी है। अमित····, एक पल को अधरों के बीच की दूसरी बढ़ती है और पुन: सामान्य हो जाती है। यंत्रवत मेरे हाथ ऊपर उठते हैं और सिर नीचे की ओर झुकता चला जाता है। अमित के चेहरे पर एक प्यार भरी गहरी मोहर डालने के बाद उसी क्रम में मेरे हाथ व सिर क्रमशः अपने-अपने स्थान पर आ जाते हैं। भीतर कुछ उथल-पुथल शुरू हो जाती है और पल में ही हृदय की भड़ास आँखों से झरने लगती है। वेदना के बादल उमड़ पड़ते हैं। सुदूर से आते पवन के झोंके स्मृति को कुरेदने लगते हैं। मानस में तैरते अतीत का चल-चित्र रेटीने पर प्रतिबिम्बित होने लगता है। सोचती हूँ, जिन्दगी भी एक अजीब पहेली है। आँखों में क्वांरी जिज्ञासा लेकर हम इस धरा पर आते हैं और हौले-हौले हवा के झोंकों के साथ हमारा विकास होता है। यौवन की देहलीज पर हमें एक नये साज का सामीप्य प्राप्त होता है और जिन्दगी के कुछ पल कम्पित हो उठते हैं एक नया स्वर लिये हुए। जीवन यौवन की चंचल लहरियों पर गतिशील होने लगता है। परन्तु कौन जानता है कि जीवन में जहाँ एक ओर उल्लास के फूल खिलते हैं, वहीं दूसरी ओर विषाद के कांटे भी मौजूद रहते हैं। किसे मालुम था कि जीवन में एक दिन ऐसा भी आयेगा जब वसन्त की मादक सुरभि हमसे छिन जायेगी और शेष रह जायेगा पतझड़ मात्र, जिसके शुष्क थपेड़ों से जिन्दगी एक ठूंठ वृक्ष बनकर रह जायेगी। अरमान पीपल के सूखे पीले पत्तों से बिखर जायेंगे। जीवन धारा कुंठित हो उठेगी और हमें इतिहास के साथ वर्तमान को सन्तुलित रखने के लिये विस्मृति का काला आवरण ओढ़ लेना पड़ेगा। जीवन की इन्हीं गुत्थियों पर विचार करते हुए मैं इजी चेयर में धसी अलबम को सीने

५

से लगाकर घायल पंखों को फड़फड़ा कर उन्मुक्त आकाश की ऊँचाई मापने लग जाती हूँ।

"सुना है, आप कविता वगैरह भी लिखते हैं?" अमित से यह मेरी प्रथम मुलाकात थी और शायद पहिला प्रश्न भी, वे मेरे भैय्या के दोस्त थे और भैय्या के साथ ही कानपुर में स्वदेशी काटन मिल में बिजनेस एक्जीक्यूटिव थे। उन्हीं से भैय्या ने हमारी शादी की बातचीत चलाई थी। उन्होंने मुझे देखे बिना ही सम्बन्ध स्वीकार कर लिया था। शायद मैं उनकी भावी पत्नी सिद्ध हो सकती थी।

भैय्या की शादी पर ही वे पहली घर आये थे। इसके पहिले उनके बारे में सुना बहुत कुछ था, परन्तु देखने का सौभाग्य आज ही प्राप्त हुआ था। लम्बे अर्से से मुझे इस दिन की प्रतीक्षा थी और शायद भैय्या को भी मेरा निर्णय जानने की उत्सुकता। इसलिये शादी पर उन्हें खास तौर से आमंत्रित किया गया था। भैय्या तो पहिले ही आ गये थे, पर वे ठीक मण्डप के दिन ही आये। हृदय में पवित्र विचारों के पुष्प तो पहिले ही खिलने लगे थे, उन्हें एक नजर देखने की जो लालसा थी, वह भी पूरी हो गई। सोचती थी न जाने कैसे होंगे, कैसे विचार होंगे? परन्तु एक ही नजर में मैंने उन्हें इस भवसागर में अठखेलियाँ करते हुये पतवार विहीन इस जीवन-नौका का नाविक कबूल कर लिया। एक ही नजर में मैंने भाँप लिया था कि एक आदर्श पुरुष में जो गुण विद्यमान रहना चाहिये, वे उनमें हैं। मण्डपाच्छदन के उपरान्त भैय्या ने हम दोनों का परिचय करवाया। बातचीत के सिलसिले में वेग वृद्धि लाने के ख्याल से मैंने पहिला प्रश्न उछाला था।

"जी हाँ, जब कभी फुर्सत मिलती है, कुछ न कुछ लिख लिया करता हूँ। तन्हाई गुजारने के लिये।" उनकी जुबान हिली तो भीतर की सरलता पूरे कमरे में छिटक गयी। मुझे ऐसा महसूस हुआ कि उनके विशाल हृदय को पढ़ पाना बहुत सरल है और मैंने उनके सामने अगला प्रश्न उछाल दिया—"क्या-क्या लिखते हैं?"

"बहुत कुछ! जब जैसे भाव आ गये, वैसी ही रचना हो जाती है।" उनकी जुबान पुनः हिली। कवि का हृदय कोई गमला नहीं होता, जिसमें कुछ चुने हुये फूल ही खिलते हैं, वरन् एक विस्तृत उद्यान होता है, जहाँ हर प्रकार के फूल खिलते हैं।" उनके शब्दों से उनके हृदय की गहराई और व्यापकता स्पष्ट झलकती थी। मन गद्‌गद् हो उठा। जी चाहता था, वे वैसे ही बोलते जायें और मैं सुनती जाऊँ, किन्तु माहौल को देखते हुए मैंने एक और प्रश्न कर दिया, "अच्छा, तो आप अपना कोई रंग दिखायेंगे?"

"क्यों नहीं।" उन्होंने कहा और दर्द के तरानों पर आँख मूद कर एक गीत छेड़ दिया—'हर खिले फूल पर नाम उनका लिखा, हमको काँटे मिले हैं चुभन के लिये····'

और केवल इसके कि गीत समाप्त हों, रात के खाने का बुलावा आ गया और तीन दिन कब गुजर गये पता ही नहीं चला। शायद छुट्टियाँ नहीं थी; वे वापिस कानपुर लौट गये थे। भैय्या ने मेरा निर्णय जानने की उत्सुकता व्यक्त की और अगले साल शादी करने का विचार रखा, परन्तु मैं चुप हो गई। कहती भी क्या? मेरी चुप्पी ही स्वीकृति मान ली गई। पत्रों का आदान-प्रदान होने लगा। पत्र में कुछ भविष्य की कल्पनायें तथा कुछ बीते दिनों की तस्वीरें अंकित रहती और फिर 'तुम्हारे पत्र की प्रतीक्षा में' पर आकर पत्र समाप्त हो जाता। अब वे 'आप' से 'तुम' पर आ गये थे जो कि मुझे भला ही लगा था। और दूसरी बार जब भैय्या घर आये, तो मेरी गर्मी की छुट्टियाँ हो चुकी थीं। जब वे वापिस जाने लगे, तो मैं और भाभी दोनों उसके साथ हो लीं। भाभी का उद्देश्य कानपुर घूमना था पर मेरा तो कुछ और ही। अचानक वहाँ पहुँचकर उन्हें चौंका देना चाहती थी।

"अरे, तुम कब आयीं?" मुझे देखते ही वे चहक उठे। उन्हें जैसे अपनी आँखों पर विश्वास ही नहीं हो रहा था, लेकिन वास्तविकता तो वास्तविकता होती है। फिर वे उस दिन के बाद नित्य आने लगे थे। हफ्ते में एक दिन रविवार अब अवसर घर के बाहर ही गुजरता था। कभी पिक्चर, कभी शापिंग, कभी होटलबाजी तो कभी पिकनिक। कभी चिड़ियाघर, कभी मोती झील तो कभी पनकी, हर जगह अपने कैमरे के साथ रहते और अलग-अलग पोजों में तस्वीरें खींचते।

समय परिवर्तन का पंख लगाये उड़ता रहा और इसी क्रम में एक दिन वह भी आया जिसकी कल्पना भी मैंने नहीं की थी। मुझे लगने लगा था जैसे कि मेरा शीशमहल रेत की टीले में परिवर्तित होता जा रहा है। आशा की डोर टूटने लगी थी और निराशा का काला कुहासा अभेद्य दीवारों की तरह चारों तरफ घिरने लगा था। अचानक एक दिन यह पता चला कि दो दिनों बाद उन्हें लंदन जाना है कम्पनी की ओर से एक साल की ट्रेनिंग के लिये। मैंने सुन रखा था जो विदेश जाता है, वह वहीं का होकर रह जाता है, इसलिए मुझे भी भय होने लगा था कि कहीं वे भी····। लेकिन अच्छे भविष्य की कल्पना कर मैं चुप्पी लगा गई थी। जाने से पहिले उन्होंने अपनी एक तस्वीर देते हुये कहा था—'अब तो एक साल इसी के सहारे

गुजारना होगा। 'और मैंने उस तस्वीर को अपने अलबम में जिसमें एक ही पृष्ठ शेष था, चिपका लिया था। इसके शेष पृष्ठ भी उनके द्वारा खींचे गये तस्वीरों से भरे हुए थे।

एरोड्रम तक मैं खुद ही उन्हें छोड़ने गयी थी। एयरक्राफ्ट की ओर जाने से पहले उन्होंने मुझसे कहा था "अनु, मेरी प्रतीक्षा करना" और हम दोनों भारी कदमों से एक दूसरे के विपरीत मुड़ गये थे। परन्तु दूसरे ही दिन हमारी आशाओं पर पानी फिर गया। हमारे स्वप्न पानी के बुलबुलों की तरह बिखर गये। हमारा शीशमहल चूर-चूर हो गया। भावनायें पथरा गयीं, जब एक दैनिक पत्र में मैंने यह पढ़ा कि उक्त एरोप्लेन 'क्रैश' हो गया और आधे से अधिक लोगों की घटना स्थल पर ही मृत्यु हो गई। शेष यात्री अस्पताल में भर्ती हैं। कुछ के चेहरे बुरी तरह झुलस गये हैं। फिर भी आशा की एक डोर बंधी थी, शायद वे बच गये हों। परन्तु जब महीनों तक उनका कोई पत्र नहीं आया, तो बची-खुची आशा भी जाती रही।

● ●

अचानक किसी ने पीछे से मेरी आँखें बन्द कर लीं। मैं हड़बड़ा उठी यह सोच कर शायद दिनेश (मेरे पति) हों और एक झटके से एलबम को मोड़कर मन:स्थिति ठीक करते हुये बोली—"छोड़िये भी, मैं पहिचानती नहीं क्या ?"

'ऊँ....हूँ .. ! तुम मुझे कभी नहीं पहचान सकतीं।'

पुनः कानों में उथल-पुथल होने लगी। आगन्तुक की आवाज बिल्कुल अमित से मिल रही थी। परन्तु चेहरा, कहीं कुछ धोखा तो नहीं हो रहा है ? मेरी समझ में कुछ नहीं आ रहा था। गुत्थी सुलझाने के लिये मैंने पूछा—"आखिर तुम कौन हो ?" "अरे तुम मेरी आवाज भी नहीं पहिचान पा रही हो। इतनी जल्दी भूल गयी अपने अमित को।"

'अमित....तुम अमित हो ?' मेरी गुत्थी और भी उलझ गयी। अचानक कुछ याद कर मैं उबल पड़ी—'नहीं, तुम अमित नहीं हो सकते। उन्होंने तो प्लेन एक्सीडेंट में अपना जीवन.....।'

'नहीं अनु . नहीं, मैं सचमुच अमित हूँ और अभी मरा नहीं हूँ।' मेरे वाक्य को बीच में खण्डित कर वह बोल उठा—'यह सच है कि मेरा प्लेन क्रैश हो गया था, पर मैं बच गया हूँ। हाँ, कुछ दिनों के लिये मैंने अपनी स्मरण शक्ति अवश्य खो दी थी और यही कारण था कि आज तक तुम लोगों को कोई पत्र नहीं लिख सका। डाक्टरी उपचार से एक साल बाद मेरी

स्मरण शक्ति तो पुनः वापिस आ चुकी है, परन्तु अपना चेहरा हमेशा-हमेशा के लिये खो चुका हूँ। मुझे प्लास्टिक सर्जरी करवानी पड़ी है।'

'तो क्या तुम सचमुच... ।'

"हाँ अनु " यह कहते हुये वे मुझे बाहों में भरने के लिये मेरी ओर बढ़े, परन्तु यकायक ठिठक गये। उनकी निगाह मेरी माँग तक जा चुकी थी। आश्चर्य मिश्रित लहजे में पूछ बैठे—

"यह क्या अनु ? क्या यह सत्य है ? क्या तूने शादी कर ली ?" एक ही साथ कई प्रश्न कर डाले उन्होंने।

"हाँ, अमित जो तुम देख रहे, बिल्कुल सत्य है।"

"लेकिन भैय्या-भाभी ने तो नहीं बताया !"

"वास्तविकता से सामना करने की हिम्मत जाती रही होगी शायद !"

"लेकिन मेरा क्या होगा अनु ? आखिर तुमने ऐसा क्यों किया ?" उन्होंने मुझे झिझोड़ते हुये पूछा।

"तुमने बहुत देर कर दी अमित ! तुम्हारे प्लेन ऐक्सीडेंट के बाद जब महीनों तक कोई पत्र नहीं आया, तो तुम्हें मृत समझ लिया गया और.........।"

"और तुमने शादी कर ली !" उनके लहजे में कुछ व्यंग्य था।

"कर ली नहीं अमित, कर दी गयी। मुझे, मेरे अपने अतीत को एक भयानक स्वप्न की तरह भूल जाने के लिये मजबूर कर दिया गया।" मेरी हिचकियाँ बँधने लगी थी। "आज तुम्हें जिन्दा देखकर इतनी खुशी हो रही है कि पूछो मत। मैं तो पहिले ही कहा करती थी, तुम बच गये होगे, लेकिन.....।"

"तुम खुश रहो इससे बढ़कर मेरी खुशी क्या हो सकती है.... ?" अब वे वास्तविकता से परिचित हो गये थे। "जाने दो, जो हुआ उसे नियति समझ कर अतीत को भुलाने की कोशिश करना और वर्तमान का सामना करना ही उचित है अब।" मैंने देखा उनकी आँखें डबडबा आई थीं—"अच्छा तो मैं चलता हूँ, ईश्वर तुम दोनों को सलामत रखे। अपना पुराना सब कुछ भुलाकर नया जीवन जीने का प्रयास करना।" और वे पराजित से मुड़ गये।

"जाते-जाते एक वायदा नहीं करोगे ?" मेरी आवाज सुनकर वे रुक गये।

"घर बसा लेना तुम्हें मेरी कसम।" सुनकर वे मुस्करा पड़े। डबडबायी आँखों से एक बार पूछकर लगभग रुआँसी आवाज में ही बोले—"तुम कहती हो तो कोशिश करके देखूँगा।"

—४, स्टाफ क्वार्टर्स, चित्रगुप्त मन्दिर, छत्तरपुर, म० प्र०

राजा कौ न्याव | एम० ए० हन्फ़ी

भौत दिनन की बात है कै एक गांव में एक किसान रात हतो। नांव हतो ऊको रन्जुआ। रन्जुआ के पास कछू जमीन हती। तामैं बौ खेती करत हतो। रन्जुआ के खेत में सबसे वढ़िया किसिम के चांउर होत ते। वैसे चांउर आस-पास का दूर-दूर तक नई होत ते। सो रन्जुआ की गुजर-बसर आराम से हो रई ती।

एक दिना दिनभर की मैनत के बाद जब रन्जुआ खा-पी कें सोओ, तौ आदी रात के उऐ सपनौं दिखानो। देखत का है कै एक महात्मा जू प्रगट भए सो रन्जुआ सें कै रए कै ऐ रन्जुआ तोए पास जमीन है, खेती-पाती अच्छी है, अब तोए कछू कमी तो है नइयां, सो अब तोए तीरथ खौं जाए चाही—इत्तो कै कें महात्मा अन्तर्ध्यान हो गए।

दूसरे दिना फिर ऐसोई सपनों दिखानो। अबकी बेरा महात्मा जी ने आदेस दओ कै ऐ रन्जुआ मैंने कई सो तैनें-ध्यान नइं दओ। तोसें हम फिर कै रए कै तीरथ करबे जाव।

रन्जुआ सुबै उठो सो उऐ भारी चिन्ता भई। ऊनें सोची जो कैसो सपनो आय ? दिन भर बौ उधेड़बुन में पड़ो रओ अबै बौ कछू ठीक सें निरनय करई नैं पाओ हतो कै रात हो गई। रात मैं सपने मैं फिर बैई महात्मा जी प्रगट भए। बोले—'काए रे रन्जुआ तैंने मोरी बात पै ध्यान नई दओ। देख, भगवत इच्छा है कि तैं तीरथ खौं जाय। रन्जुआ नें फौरनई महात्मा के पांव पकर लए।

सुबह भई सो रन्जुआ ने सबसें पहलें जिमीन बैंची। तीरथ के लांजें कछू पइसा संगै लओ सेस सोने के सौ सिक्का ऊनें माटी के एक घैला मैं बंद कर दए और घैला मैं चांउर भर दए। घैला खौं मांटी सैं छाब दओ और उऐ साहूकार के घरैं लै गओ। रन्जुआ नें साहूकार सें कई—"भइया, हम तौ तीरथ खौं जा रए हैं। पतौ नई-कितेक समय लग जाए। जब तक हम लौट न आएं, तब तक के लानैं हमाओ जौ घैला धर लेओ।" साहूकार ने खुसी-खुसी हांमीं भर दई और कई कै पूरौ घर पड़ो है। जां तुम चाहौ सो धर देओ। रन्जुआ ने साहूकार के भीतर के कमरा में गड्ढ़ा खोद कें अपनो घैला गाड़ दओ। ऊमैं मांटी छाब दई और साहूकार सैं बिदा लैकें बौ तीरथ खौं चल दओ।

ऊ समय मोटरें-ओटरें न हतीं, लोग कै पैदल कै बैलगाड़ी सें तीरथ करबे जात हते। सो भौत समय लग जात तो। रन्जुआ खौं सबरे तीरथ के दरसन करत-करत छः बरस लग गए। छः बरसे के बाद जब रन्जुआ तीरथ सें लौटो तौं गाँव-वारन नें ऊको बड़ो स्वागत करो। बौ साऊकार के पास गयो सो अपनौ घैला उठा ल्याओ। अपनी टपइया में जाकें उनें जो घैला फोड़ो, तो देखत का है कै चांउर तौ ज्यों के त्यों भरे हैं पै सौने के जौन सिक्का हते, बे सब गायब हैं। रन्जुआ खौं पसीनाँ छूट गओ। बौ तुरंतई साहूकार के पास गओ। उसें कई कै भइया घैला में सौने के सिक्का हते, सो वे नइयां ? तुमें जरूरत हती तौ कछू बात नइयां लेकिन अब तो वापिस कर देओ। साऊकार नें कई कै हम का जानें। तुमई नें धरे न हुइएँ। धरे होते तो कां जाते ?

रन्जुआ ने भौतई मिन्नतें करीं। कई कै भइया हमार जीवन भर की कमाई आए। हम तौ मिट जैहें। दया करो। लेकिन साऊकार ने हांमी न भरी, उल्टेऊ कान लगो कै देखो तो भइया, जौ हमें वेईमान बनाउत है। खूब भीड़ जमा हो गई। सब जानत हते कै रन्जुआ ईमानदार है। झूठ नईं बोल सकत, लेकिन कछू प्रमान न हतो। सो सबरे चुप रै गए।

रन्जुआ रोउत-धोउत राजा के ना पौंचो। अपनी बिथा सुनाई। राजा ने साऊकार खौं बुलाओ, लेकिन साऊकार नें सफा इन्कारी कर दई। उनें कई कै म्हाराज रन्जुआ नें घैला अपने हाँथन बन्द करो हतो। पइसा हमें दिखाए तो हते न। होते तौ जाते कां ?

अब तौ राजा सोच में पड़ गए। उननें रज्जुआ सें दो दिना बाद आवे की कै दई। राजा ई मुकदमा सें काफी परेसान हते। वे सोच रए हते कै कैसे न्याय होय। सोचत-सोचत पलका में जा पड़े। भोजन के समय हो गए पर राजा नईं उठे। रसोई सें आज खूब सुगंद आ रई हती। भौत दिना बाद ऐसी वढ़िया सुगंद आई हती। तबई रानी आ गई। उननें राजा सें भोजन करबे की कई। राजा नें इन्कारी कर दई। लेकिन फिर भी पूछो कै रसोई सैं आज भारी सुगंध आ रई, का बनी है ? रानी नें कई कै आज बढ़िया चांउर बने हैं, पुराने चांउर है। पुराने चांवरन की खुसबू तौ अलगई होत है। देखौ सबरो महल महक गओ है।

राजा के दिमाग में बिजरी सी कौंद गई। बे तुरंत उठे। रन्जुआ खों बुलाओ, साऊकार खों बुलाओ, फिर चांउर के पुराने ब्योपारी बुलाए गए। राजा ने रन्जुआ के थैला के चांवरन खों देख कें ब्यापारियन सें पूँछी कै बताओ जे कितेक दिनां के चांउर आएं? ब्यापारियन नें चांउर परखे और बताई कै म्हाराज जे चांउर एक साल सें ज्यादा के पुरानें नइयां। बस फिर का हतो साऊकार खों पकड़ लओ गओ। काये सें कै छः साल पैलें गाड़े गये थैला में सें एक बरस के चांउर कैसें कड़ सकत?

सो साऊकार खों भली पतइयां, दै दनादन। ऊको भरे दरबार में भारी अपमान भओ। साऊकार खों जब ऐनई मार पड़ी तो ऊनें अपनी गल्ती मान लई और कई कै ऊनें रन्जुआ के गड़े थैला में सें चांउर और सिक्का काड़ लए हते और नए चांउर भर दए हते।

साऊकार खों रन्जुआ के थैला सें चुराए गए सोने के सिक्का वापिस करनें पड़ गए। राजा के न्याय की बड़ी बड़वाई भई। सो भइया जीवन के कौनऊ छेत्र में बेईमानी नईं करी चइये। काये सें कै ऊको फल बुरओ होत है।

—शासकीय उ० मा० विद्यालय, राजनगर, छतरपुर; म० प्र०

लगत अकबकी भौत है | ● रामेश्वर गुरु

कब हुइहै भुनसार, गजब को अँधयारो है
काँ है खेवनहार, नाव डगमगा रई है।
मतलब को सिंसार, परी है सब खों अपनी
का हुइहै करतार, देस पै बिपदा छाई।
मँहगाई सरफूंद, प्रान सांसत में आ गये
मिलै न घी दो बूंद, आरती तबके लानें।
अब नइयां परतीत, लगत अकबकी भौत है
बिला गई बा प्रीत, जौन बांधें ती सबखों।

—९, गुजराती कालोनी, चेरीताल, जबलपुर

दोहों की दमक

● वित्तू सोनी एवं जैतराम धर्मैनियां

काम करै हर ब्योंत सें, होबै नईं कुब्योंत।
आटा देखैं पास को, फिर न्योतो आ न्योंत।।

सुनै गुनै न काउ की, अपनी धुर्रत जात।
नाच न आवै बार भर, आँगन टेड़ो कात।

ढूंड़े सें गैया मिलै, टेरै मित्र दिखाय।
जे दोऊ त्यागन करै; वित्तू सुख मे राय।।

वस्त्र दरेसी ऊजरो, करकें धर संदूक।
काम परे पै देत है, भरी धरी बंदूक।।

मउआ टपकत डार सें, चोंखत करत पियार।
जब मउआ टपकत नईं, काटन लगत डरार।

—स्व० वित्तू सोनी, छतरपुर, म० प्र०

श्री कामद के सीस पै, दो समुद्र इक साथ।
ज्ञानसिंधु सब संत हैं, दयासिंधु रघुनाथ।।

राघव-पग नीलम करें, सीता-पग मणि लाल।
लखन-चरन हीरा करें, मग-ककरन के हाल।।

सुरपति लै सेना खड़ो, कामदगिरि के दोर।
अब कुबेर न बेर कर, ककरा लेव बटोर।।

सुरपति तुम बाउर भये, कौन चीज लै जांय।
चित्रकूट के गिरि-शिखर पारसमणी दिखांय।।

कंद-मूल दौनन धरे, तूमन में हो नीर।
परसत होबें जानकी, जेंवत हों रघुबीर।।

—जैतराम धर्मैनियां 'जैत' मऊरानीपुर, उ० प्र०

देवरी की प्राचीन मूर्ति कला

कृष्णकुमार त्रिपाठी

वर्तमान देवरी नगर सागर जनपद में रहली तहसील के अन्तर्गत २३ ०५ अंश उत्तरी अक्षांश तथा ७८°४० 'पूर्वी देशांतर पर सागर से लभगभ ६४ किलोमीटर दूर नरसिंहपुर राजमार्ग पर सुख चैन नदी के तट पर स्थित है। इससे पूर्व इस नगर का नाम 'रामगढ़' अथवा उजरगढ़ होने का उल्लेख है। ई० ९वीं-१०वीं शती में चंदेल शासकों द्वारा यहाँ शिव-मन्दिरों तथा हिन्दू देवी-देवताओं की बहुसंख्यक प्रतिमाओं का निर्माण कराया गया, जिसके फलस्वरूप इस नगर का नाम देवरी (देव-स्थान अथवा देवपुरी) रखा गया प्रतीत होता है। इस नगर की स्थापना चंदेल शासकों ने अपने राजत्व काल में की, जिसकी पुष्टि यहाँ के विविध शिल्पावशेषों तथा कलाकृतियों से की जा सकती है। प्राचीन भरत-देवालयों तथा पाषाण प्रतिमाओं के अतिरिक्त कलात्मक शिल्पावशेषों का यहाँ बाहुल्य है। देवरी नगर तथा उसके समीपवर्ती क्षेत्रों में विविध धर्मों से संबंधित पुरातत्वीय महत्व की शिल्प-सम्पद के अवलोकन से यह ज्ञात होता है कि मध्यकालीन युग में विवेच्य क्षेत्र कला के प्रमुख केन्द्र-रूप में विख्यात था।

देवरी नगर के विविध मन्दिरों तथा आस-पास के कतिपय महत्वपूर्ण क्षेत्रों में संग्रहीत पाषाण-कलावशेषों तथा प्रतिमाओं का विवरण इस प्रकार है :—

(१) **सिद्धेश्वर मन्दिर**—उमा-महेश्वर, अर्धनारीश्वर, हरिहर, नृत्य-गणेश, सर्वतोभद्रशिव, सूर्य, अग्नि, दिक्पाल, वायु, ब्रह्मा-विष्णु सहित ललटाबिंब, योगासन में अवस्थित शिव, सरस्वती, कच्छप पर आरूढ़ यमुना तथा सुर-सुन्दरी आदि।

(२) **राधाकृष्ण-मन्दिर** :—बलराम, वाराह-वाराही, सूर्य, बीसभुजी देवी, महिषमर्दिनी, मातृका, दिक्पाल आदि।

(३) **किले के समीप** :—अलंकृत द्वार-पक्ष स्तंभ (गंगा तथा यमुना के अंकनों सहित), पूर्ण विकसित कमल के अंकन सहित छत की आंतरिक सज्जा-पट्टिका, तीर्थंकर प्रतिमा (खंडित)।

(४) **खंडेराव मन्दिर** :—(बावड़ी) हरिहर तथा स्खलितवसना सुन्दरी।

(५) **बाबिया मन्दिर** :—विष्णु (खंडित) कलात्मक स्थापत्य खंड, जैन तीर्थंकर (खंडित) आदि।

उमा महेश्वर

कलात्मक पाषाण फलक

निर्माण कला के आधार पर उपरोक्त प्रतिमाएँ तथा कलावशेष ई० ९वीं शती से लेकर १३ वीं के मध्य के हैं। कतिपय महत्वपूर्ण प्रतिमाओं का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है :—

(१) **बलराम** :—बलराम को शेषनाग का अवतार माना गया है। चार हाथों वाले बलराम को साधारणतया हल और मूसल के अतिरिक्त शंख तथा चक्र धारण किये दिखाया जाता है। उनके मस्तक के ऊपर सप्तफण वाले शेषनाग का छत्र होता है। उनके साथ उनकी पत्नी रेवती का अंकन मिलता है। चतुर्भुजी बलराम की कई प्रतिमाओं में हल, मूसल के अतिरिक्त उनके एक हाथ में मदिरापात्र तथा दूसरा कमर पर होता है।

बलराम की एक स्थानक द्विभंग प्रतिमा देवरी के वर्तमान राधा-कृष्ण मन्दिर में संग्रहीत है। विवेच्य प्रतिमा द्विभुजी है। दाहिने हाथ में सुरापात्र तथा बायाँ हाथ कटिभाग से नीचे अवस्थित है। मुखमुद्रा में सौम्य अपितु सुरापान

की मस्ती का भाव द्रष्टव्य है। केश-विन्यास, कर्णाभरण, ग्रैवेयक, कंकण, केयूर, यज्ञोपवीत, मेखला (कटिसूत्र), मुक्तदाम, वनमाला, अधोवस्त्र, पादवलय (नूपुर) आदि विविध वस्त्राभरणों से सुसज्जित है। सिरोभाग के ऊपर शेष-नाग का छत्र है। विवेच्य प्रतिमा विशेष कलात्मक है। उनके दाँये पार्श्व में द्विभुजी नारी प्रतिमा का अंकन है, जो बलराम की पत्नी रेवती प्रतीत होती है। उनके दाहिने हाथ में सनालकमल तथा बायें हाथ में घट है। विवेच्य प्रतिमा स्त्रियोचित विविध सुरुचिपूर्ण वस्त्राभरणों से सुसज्जित है। नारी प्रतिमा को वारुणी देवी भी माना जा सकता है, जो बलराम को मद्यपान कराते हुए द्रष्टव्य है। स्त्री-प्रतिमा बलराम के दाहिने पार्श्व में है, इसलिये इसे वारुणी देवी कहना अधिक युक्तिसंगत प्रतीत होता है। यदि बलराम के बाँयें भाग में नारी प्रतिमा का अंकन होता, तो इसे बलराम की पत्नी रेवती से अभिज्ञान किया जा सकता है। मूर्तिकला के आधार पर इसे ई०१०वीं शती लगभग का माना जा सकता है।

(२) उमा-महेश्वर :—ललितासन में पीठिका के ऊपर बैठे हुए उमा-महेश्वर की चतुर्भुजी प्रतिमा उल्लेखनीय है। शिव के दाहिने दोनों के आयुध अस्पष्ट है। बांयें उपरले हाथ में धतूरे का पुष्प तथा नीचे का बांया हाथ देवी पार्वती के पृष्ठ भाग से होता हुआ वाम उरोज का स्पर्श करते हुए प्रदर्शित है। पार्वती के ऊपरी दाहिने हाथ में ललाटतीलिका तथा नीचे का हाथ शिव के कंधे पर अवस्थित है। देवी के दाहिने उपरले हाथ में दर्पण तथा नीचे के हाथ में कंघा है।

शिव के सिरोभाग पर मुक्तागुंफित जटा-मुकुट, कर्णाभरण, चौड़ी पट्टी वाला ग्रैवेयक, अंगद वलय, मेखला, यज्ञोपवीत, मुंडमाल आदि द्रष्टव्य हैं। देवी-पार्वती का केश-विन्यास, ललाटिक रत्न पट्टिका से सुसज्जित है कर्ण-कुंडल, ग्रैवेयक, स्तनहार, कंकण, कटिसूत्र, पादवलय तथा पारदर्शी अधोवस्त्र आदि वस्त्राभरणों का रोचक अंकन है। दोनों देवों के चरणों के मध्य नृत्यरत भृंगी का अंकन है। चरण-चौकी के बाह्य भाग में वाहन रूप में नन्दी तथा सिंह बैठे दिखाये गये है। चरण चौकी के नीचे तीन मानवाकृतियाँ (रावणा-नुग्रह) द्रष्टव्य है, जो चरण पीठिका का सिरोभाग से ऊपर उठाते हुए परि-लक्षित है। दोनों पार्श्वों में कार्तिकेय तथा गणेश आसनस्थ है। फलक के ऊपरी भाग में मालाधारी विद्याधर युगल द्रष्टव्य है। समय, ई० १२वीं लगभग। उमा-महेश्वर की कतिपय अन्य प्रतिमाएँ यहाँ देखने को मिली हैं, जो उपरोक्त प्रकार की है।

(३) योगासन-शिव :—एक अलंकृत पाषाण सज्जा-पट्टिका के बाएँ पार्श्व में ध्यानस्थ चतुर्भुजी शिव का कलात्मक अंकन है। उनके सामने के दोनों हाथों के मध्य बीजपूरक (श्रीफल) है। उपरले दोनों हाथों में क्रमशः त्रिशूल तथा सर्पफण हैं। शिरोभाग के ऊपर जटामुकुट, मुक्तायुक्त पट्टिका, कर्णाभरण, ग्रीवासूत्र, स्कंधमाल, कंठहार, यज्ञोपवीत, कंकण, मुंडमाल, पाद-वलय तथा विविध वस्त्राभरणों का सुरुचिपूर्ण अंकन द्रष्टव्य है।

देव के बाएँ भाग में मालाधारी विद्याधरों का रोचक अंकन है। दाहिने पार्श्व में कलात्मक वास्त्राभरणों से सुसज्जित द्विभंग मुद्रा में द्विभुजी आयुध पुरुष तथा कमलधारी देवी की स्थानक प्रदर्शित हैं। इन दोनों के मध्य एक नारी बैठी परिलक्षित है।

विवेच्य कलात्मक प्रस्तर खंड का दाहिना भाग खंडित है, जिसमें क्रमशः ब्रह्मा तथा विष्णु का अंकन रहा होगा। इस प्रकार विवेच्य शिल्पावशेष 'त्रिदेवों' (ब्रह्मा-विष्णु-महेश) से संयुक्त प्रतीत होता। संभवतः इसी पाषाण पट्टिका का उपरोक्त भाग वर्तमान सिद्धेश्वर मन्दिर की दीवाल में चुना हुआ है, जिसमें योग-मुद्रा में त्रिमुखी ब्रह्मा, विष्णु, देव-देवी तथा गगनचारी विद्या-धर द्रष्टव्य हैं। इस फलक के ऊपर चूने से पुताई हो जाने के कारण इसका कलात्मक सौंदर्य नष्ट कर दिया गया है। समय, लगभग ई० ११ वीं शती।

(४) अर्धनारीश्वर : दो अलंकृत स्तंभों के मध्य स्थानक अर्धनारीश्वर की प्रतिमा विशेष महत्व की है। मुख मुद्रा में सौम्य भाव परिलक्षित है। विवेच्य प्रतिमा का बाँया अर्ध भाग उभारयुक्त स्तन सहित उमा का है। एक कान में चक्रकुंडल और दूसरे कान मे साधारण कुंडल हैं। एक ओर माणिक्ययुक्त मुकुट और दूसरी ओर जटामुकुट है। बाँयी ओर देवी (उमा) स्वरूप है। दाँयी ओर देव रूप शिव का है। उनके दायें हाथों में क्रमशः त्रिशूल और अभयमुद्रा है तथा बाँये हाथों में दर्पण और मंगलघट है। उपरोक्त प्रतिमा के अंग-प्रत्यंग पुरुष-स्त्री (शिव-उमा) के यथोचित विविध वस्त्राभरणों से सुसज्जित है। नीचे दोनों पार्श्वों में वाहन रूप में नन्दी तथा सिंह का अंकन है। बाँयें पार्श्व में एक परिचारक स्थानक मुद्रा में दृष्टव्य है। साहित्य विवरणों से ज्ञात होता है कि प्रजा-उत्पत्ति का काम विधिवत् न होने ब्रह्मा ने शिव का ध्यान किया तब अर्धनारीश्वर के रूप में शिव उनके समक्ष प्रकट हुए। विवेच्य प्रतिमा का सुरुचिपूर्ण कलात्मक अंकन मूर्तिकला की सजीवता का दिग्दर्शन कराती है। समय, लगभग ई० १२वीं शती।

देवरी से प्राप्त अर्धनारीश्वर की एक अन्य प्रतिमा में उपरोक्त प्रकार का समान अंकन है। इस प्रतिमा के वस्त्राभरण विशेष कलात्मक हैं। ऊपर की

पट्टिका में शिखरयुक्त गवाक्ष का अंकन है। बायें पार्श्व में मकरमुख, गज-
शार्दूल तथा दर्पण में रूप-लावण्य का अवलोकन करती हुई रूपगर्विता सुन्दरी
का रोचक अंकन हैं। समय, ई० १२वीं शती लगभग।

(५) **सर्वतोभद्र शिव** —द्विभंग परिकायक में स्थानक चतुर्भुजी शिव,
मन्दिर के कोणीय प्रस्तर खंड पर अंकित हैं। पाषाण-फलक के सामने के भाग
में शिव की युगल प्रतिमाएँ हैं, जिनमें दोनों चतुर्भुजी हैं। एक प्रतिमा के
उपरले दोनों हाथों में क्रमशः त्रिशूल तथा सर्पफण है। नीचे के दाहिने हाथ
में धतूरे का पुष्प है तथा बायाँ हाथ कटिभाग पर अवस्थित है। देव के सिरो-
भाग में जटामुकुट, कर्णकुण्डल, एकावली, यज्ञोपवीत, कंकण, मुँडमाल,
कटिबंध, पैरों में नूपुर तथा अन्य विविध वस्त्राभरणों का रोचक समन्वय है।
मुख-मुद्रा में सौम्य-भाव दृष्टव्य है। नीचे दाहिने भाग पर वाहन नन्दी आस-
नस्थ है। पट्टिका का ऊपरी भाग कलात्मक है। समय, लगभग ई० १२ वीं
शती।

(६) **हरिहर** :—दो अलंकृत स्तंभों के मध्य हरिहर अर्थात् विष्णु तथा
शिव की समन्वित स्वरूप वाली सुन्दर प्रतिमा संग्रहीत है। विवेच्य प्रतिमा
चतुर्भुजी है तथा प्रतिमा का दाहिना भाग शिव का तथा बायाँ भाग विष्णु
का है। दाहिने पक्ष के दोनों हाथों में क्रमशः त्रिशूल तथा अक्षमाल सहित
वरद् मुद्रा में है, जो शिव के परिचायक है। बाँयें पक्ष के दोनों हाथों में चक्र
तथा शंख है, जो विष्णु के आयुधों से सम्बन्धित है। उपरोक्त प्रतिमा के
यथोचित विविध वस्त्राभरणों का कलात्मक अंकन प्रभावोत्पादक है। नीचे
दाहिने ओर स्थानक करबद्ध मानवाकार नन्दीश्वर तथा बाँयी ओर मानवाकार
नंदीश्वर तथा बायीं ओर मानवाकार करबद्ध गरुड़ का रोचक अंकन है। ऊपरी
भाग में मालाधारी विद्याधर दृष्टव्य है। समय, लगभग ई० १२ वीं शती।

(७) **सूर्य**—दो अलंकृत स्तंभों के मध्य स्थानक चतुर्भजी सूर्य-प्रतिमा
उल्लेखनीय है। देव के ऊपरी दोनों हाथों में सनालकमल है। दाहिना नीचे
का हाथ वरद् मुद्रा में तथा बाँया हाथ शंख से विभूषित है। सिरोभाग के
ऊपर किरीट मुकुट, वर्णकुंडल, कंठहार, वक्षमाल, वनमाल, कटक, हस्तवलय,
मेखला, मुक्तदाम, अधोवस्त्र तथा अन्य वस्त्राभरणों का कलात्मक अंकन है।
दोनों पैरों में उपानह (बूट) धारण किये हैं। उभय चरणों के मध्य उषा देवी
दृष्टव्य हैं। दोनों पार्श्वों में दण्ड तथा पिंगल स्थानक परिलक्षित हैं। उपरोक्त
सूर्य-प्रतिमा का समग्र कलात्मक अंकन विशेष महत्वपूर्ण है।

द्विभुजी सूर्य की एक अन्य प्रतिमा स्थानक मुद्रा में देखने को मिली है,
जिसके दोनों हाथों में सनालपुष्प प्रदर्शित है। विवेच्य प्रतिमा के वस्त्राभरणों
में उपरोक्त प्रकार का समान अंकरण है। दोनों पैरों के मध्य उषा तथा पार्श्वों
में दण्ड पिंगल दृष्टव्य हैं। समय, लगभग ई० १२वीं शती।

(८) **अग्नि**—अग्नि देव को आग्नेय कोण का दिग्पाल माना गया है।
वैदिक देवों में उनका स्थान महत्वपूर्ण है। उन्हें धूमकेतु भी कहा जाता है।
अग्नि देव की विवेच्य प्रतिमा चतुर्भुजी है। उनके दाहिने दोनों हाथों में क्रमशः
अक्षमाल सहित वरद्मुद्रा में तथा शूचि है। बाँयें हाथों में पोथी (पुस्तक)
तथा घट है। विवेच्य प्रतिमा विविध वस्त्रालंकरणों से युक्त है। नीचे दायें
पार्श्व में परिचारक तथा बायें भाग में वाहन 'मेष' का अंकन है, जो देव की
ओर आराध्य भावयुक्त उन्मुख है। समय, लगभग ई० ११वीं-१२वीं शती।

(९) **वायु** —वायु देव वायव्य दिशा के अधिपति हैं। उन्हें महाभारत में
भीम तथा रामायण में हनुमान का पिता कहा गया है। वायु-पुराण में इनके
सम्बन्ध में अनेक रोचक कथानक मिलते हैं। वायु का वाहन मृग (हरिण) है।

वायु देवता की विवेच्य द्विभंग प्रतिमा स्थानक तथा चतुर्भुजी है। उनके
दाहिने दोनों हाथों में क्रमशः ध्वजयुक्त दण्ड तथा अभयमुद्रा में हैं। बायीं
ओर के दोनों हाथ खंडित हैं। सिरोभाग के ऊपर किरीट मुकुट, पीछे कलात्मक
चक्राकार प्रभामण्डल, चक्रकुंडल, चंद्रहार, केयूर, कंकण, यज्ञोपवीत, मेखला,
उज्जालक, वनमाल, नूपुर तथा पारदर्शी वस्त्राभरणों का सुरुचिपूर्ण अंकन है।
दायें भाग में माला लिये पार्श्वचारक दृष्टव्य है। समय लगभग ई०
१२वीं शती।

(१०) **नृत्य-गणेश**—नर्तन मुद्रा में एक दंत चतुर्भुजी गणेश की विवेच्य
प्रतिमा विशेष महत्व की है। उनके ऊपरी दोनों हाथों में परशु तथा गदा है।
दाहिना ऊपरी हाथ मुड़ा हुआ वक्ष पर नृत्य भाव में अंकित है तथा बायां
हाथ कटिभाग पर अवस्थित है। सिरोभाग के ऊपर करंडमुकुट, वक्रतुंड,
महाकाय तथा लम्बोदर हैं। समय लगभग ई० १३वीं शती।

(११) **सरस्वती**—देवरी से प्राप्त सरस्वती की विवेच्य प्रतिमा चतुर्भुजी
है। सिरोभाग के पीछे सादा प्रभामण्डल है। देवी स्त्रियोचित वस्त्राभरणों
तथा केश-विन्यास से अलंकृत हैं। मुख्य दोनों हाथों से वीणा वाद्य संभाले बैठी
हुई दृष्टव्य हैं। दायाँ हाथ खंडित है तथा नीचे के बायें हाथ में कमण्डल है।
ऊपरी भाग के दोनों पार्श्वों में एक-एक ध्यानस्थ योगी बैठे हुए दिखाये गये
हैं। नीचे देवी का वाहन हंस ऊर्ध्वमुखी दृष्टव्य है। समय लगभग ई०
१२वीं शती।

(१२) **कलात्मक पाषाण-फलक**—प्राचीन मंदिर के द्वार-पक्ष में प्रयुक्त कलात्मक पाषाण फलक पर कल्पवल्ली, नागवल्ली, कमल पुष्पों तथा पंखुड़ियों का प्रभावपूर्ण कलात्मक अंकन है। इन अलंकरणों के साथ मध्य भाग में प्रेमालाप करते हुए आकर्षक भाव-भंगिमाओंयुक्त मानव-युक्त दृष्टव्य हैं। पाषाण-फलक का समग्र अंकन विशेष कलात्मक तथा आकर्षक है।

एक अन्य मन्दिर-द्वार पाषाण फलक के नीचे के भाग में मंगलघट लिये द्विभंग मुद्रा में मकरवाहिनी गंगा, दिक्पाल तथा परिचारिकाओं का रोचक अंकन है। ऊपरी भाग में क्रमशः कमलांकन, मिथुन-दृश्य, नाग-कन्या, मंगल-घट सहित लता-वल्लरी का सुरुचिपूर्ण अंकन हैं। इसी प्रकार एक दूसरे कलात्मक पाषाण-खंड पर घट लिये हुये कच्छप पर आरूढ़ द्विभंग मुद्रा में यमुना का अंकन है। उनके समीप ही छत्र लिये परिचारिकाएँ दृष्टव्य हैं। ऊपरी भाग में प्रेमालाप करते हुए मानव-युगल, भारवाहक (कीचक) तथा लता-वल्लरी का कलात्मक सामंजस्य है। उपरोक्त प्रकार के अन्य कई कलात्मक मन्दिर पाषाण-फलक विवेच्य क्षेत्र के विविध स्थलों में संग्रहीत हैं।

किसी प्राचीन मंदिर की आंतरिक छत में प्रयुक्त सज्जा पट्टिका के चौकोर शिला खंड पर पूर्ण विकसित (प्रफुल्ल) कमल का कलात्मक अंकन है। इसके मध्य भाग में पुष्प-पराग आदि का जीवन्त चित्रण किया गया है, जो शिल्पियों की कार्य-कुशलता का परिचायक है। समय, लगभग ११वीं शती।

(१३) **देवांगनाएँ**—शिल्प-शास्त्रों में प्रमदा अथवा उन्मत्त देवांगनाओं, नृत्यांगनाओं तथा अप्सराओं के रोचक विवरण मिलते हैं। जिनमें इनके विवध भावों के आधार पर नामकरण किये गये हैं। इन अप्सराओं तथा सुर-सुन्दरियों आदि का विविध भाव-भंगिमाओं सहित चित्रण प्राचीन मंदिरों की वाह्य भित्तियों पर करने का विधान था। खजुराहो के मंदिरों में बहुसंख्यक देवांगनाओं-अप्सराओं का सुरुचिपूर्ण अंकन देखने को मिलता है।

देवरी में आलस्य भावयुक्त सुंदरी (लीलावती) की आकर्षक भाव-भंगिमाओं सहित द्विभंग मुद्रा वाली प्रतिमा उल्लेखनीय है। उसके सिरोभाग के ऊपर सुसज्जित केश-विन्यास, कर्णकुंडल, ग्रीवासूत्र, ग्रैवेयक, स्तनहार, कटिमेखला, कंकड़, नूपुर, मुक्तदाम आदि विविध वस्त्राभरणों का सुरुचिपूर्ण समन्वय है। उत्तरीय बायें पार्श्व से होकर नीचे तक लटकता हुआ प्रदर्शित है। उसके दोनों हाथ पीछे की ओर मुड़े हुए आलस्य भाव सहित प्रदर्शित है। विवेच्य प्रतिमा का लास्य भाव कलात्मक ढंग से रूपायित किया गया है। समय, लगभग ई० १२ वीं शती।

(१४) **स्खलितवसना**—खंडेराव बावड़ी के अन्दर चुनी गई एक प्रतिमा विशेष रूप से उल्लेखनीय है, जो प्रमदा सुन्दरी की है। प्रतिमा का दाहिना हाथ ऊपर उठा हुआ सिर के ऊपर अवस्थित है तथा बाँया हाथ कटिभाग पर है। पैरों तथा अन्य शारीरिक अंगों में आलस्यभाव द्रष्टव्य है। प्रतिमा के अंग-प्रत्यंगों का दम्भ मांसलायुक्त उभार एवं समग्र शारीरिक सौष्ठव तथा विविध कलात्मक वस्त्राभरणों के अंकन में रोचक समन्वय है। गले में कंठसूत्र, एकावली, स्तनसूत्र, ललाटपट्टिकायुक्त कुंतल केश-सज्जा, उत्तरीय तथा बेलबूटोंयुक्त अधोवस्त्र का कलात्मक अंकन है। विवेच्य प्रतिमा को कलाकार ने बड़े मनोयोग से रूपायित किया है। उसका कलात्मक पार-दर्शक अधोवस्त्र नीचे की ओर स्खलित होता हुआ द्रष्टव्य है। समय, लगभग ई० ११वीं शती।

(१५) **अन्य प्रतिमाएँ-बीसभुजी देवी**—नृत्य मुद्रा में बीसभुजी देवी की आकर्षक प्रतिमा है। उनके हाथों में विविध आयुध प्रदर्शित हैं। सामने के मुख्य दोनों हाथ नृत्य-भाव में हैं। विविध अलंकरणों तथा अधोवस्त्र का कलात्मक अंकन उल्लेखनीय है। देवी एक हाथ से दैत्य (राक्षस) के केश पकड़े हैं। वाहन सिंह, राक्षस के अधोभाग पर मुख से प्रहार कर रहा है।

नृ-वराह—पृथ्वी-देवी (भू-देवी) का उद्धार करते हुए नृ-वराह की चतुर्भुजी रोचक प्रतिमा है। ऊपर के दोनों हाथों में गदा तथा चक्र है। नीचे का दाहिना हाथ कटिभाव पर तथा बायाँ हाथ बायें पैर के घुटने पर अवस्थित है।

इसी प्रकार देवरी नगर के अन्य विविध स्थलों में सज्जा-पट्टिका-स्तंभ, देव-देवी प्रतिमाएँ, चतुर्भुजी-मातृका, वाराही, दिक्पाल, महिषासुर मर्दिनी आदि की अन्य कई प्रतिमाएँ संग्रहीत हैं।

देवरी नगर तथा उसके समीपवर्ती स्थलों से प्राप्त कतिपय पाषाण-प्रतिमाएँ सागर विश्वविद्यालय के हरिसिंह गौर पुरातत्व संग्रहालय में प्रदर्शित है। निम्नलिखित प्रतिमाएं कला की दृष्टि से उल्लेखनीय हैं—

१. **महिषमर्दिनी**—महिषमर्दिनी देवी की यह प्रतिमा, महिष (असुर) का वध करते हुये भाव युक्त है। देवी की चार भुजाएं हैं। सिरोभाग पर केश-पाश तथा रत्नों से जटित (गुंफित) पट्टिका दृष्टव्य है। कानों में चक्राकार कुंडल, गले में एकावली, जिसका मध्य भाग दोनों उरोजों के बीच से होता हुआ नीचे लटक रहा है। दोनों भुजाओं के मध्य से होता हुआ उत्तरीय (दुकूल) भी नीचे लटकता हुआ प्रदर्शित है। हाथों में कंकण तथा पैरों में ढीले नूपुर सुशोभित हैं।

६

देवी उपरले दोनों हाथों में क्रमशः खड्ग और ढाल लिये हैं। नीचे दाहिने हाथ में त्रिशूल है, जिसका अग्रभाग महिष (असुर) की गर्दन के समीप प्रहार करते हुये प्रदर्शित है। त्रिशूल का अगला कुछ भाग महिष के शरीर के अंदर प्रविष्ट है। नीचे बाये हाथ से असुर के मुख को दबाये हैं, जो गर्दन से ऊपर की ओर उठा हुआ है। देवी का दाहिना पैर महिष के पृष्ठ भाग पर अवस्थित है। बायां पैर लम्बवत् वीर भाव में दृष्टव्य है।

महिष (असुर) बैठा हुआ प्रदर्शित है, जिसके पैर अन्दर की ओर मुड़े हैं तथा गर्दन से मुख तक का भाग ऊपर की ओर उठा हुआ है। महिष के सींग तथा कानों का लम्बवत् अंकन सुरुचिपूर्ण एवं विशेष कलात्मक है। महिष के पृष्ठ भाग के ऊपर देवी का वाहन सिंह द्रष्टव्य है, जो महिष की पीठ पर मुख से आक्रमण कर रहा है। विवेच्य प्रतिमा का संपूर्ण अंकन कलात्मक है तथा पाषाण-कला के माध्यम से महिषासुर वध कथानक की सुन्दर (प्रस्तुति) हैं। इस प्रतिमा का निर्माण काल ई० १० वीं शती प्रतीत होता है।

२. चतुर्भुजी विष्णु :—दो कलात्मक स्तंभों के मध्य चतुर्भुजी विष्णु की स्थानक प्रतिमा है। सौम्य मुखकृति भावाकर्षक है। सिरोभाग के ऊपर किरीट मुकुट, कानों में चक्रकार कुण्डल, गले में दो लड़ियों की माला, कटिभाग से नीचे तक लटकता हुआ यज्ञोपवीत प्रदर्शित है। दोनों भुजाओं के मध्य भाग से नीचे घुटनों तक लटकता हुआ वैजयंतीमाल सुशोभित है। हाथों में कंकण, केयूर तथा पैरों में नूपुर आदि अलंकरण शोभायमान हैं।

उपरले दोनों हाथों में क्रमशः दाईं ओर के हाथ में पत्रावली तथा पंखुड़ियों से युक्त सनाल कमल तथा बाये उपरले हाथ में शंख लिये हैं। नीचे के दोनों हाथ खंडित हैं, तथापि क्रमशः चक्र पुरुष तथा अस्पष्ट आकृति को मानवाकार बैठे हुये दिखाया गया है। कटिबंध, विविध आभूषण तथा अधोवस्त्र का सुरुचिपूर्ण प्रदर्शन है। ऊपर की पट्टिका में पत्रावली उत्खचित है तथा दायें पार्श्व की पट्टिका में गज-शार्दूल आदि द्रष्टव्य है। निर्माणकाल, ई० ११ वीं शती लगभग।

३. नृ-वराह:—चतुर्भुज वराह भगवान, जिनका मुख वराह आकृति तथा तथा शरीर का अन्य भाग मानवाकृति है। वे अपने दांत के अग्र भाग से पृथ्वी देवी को ऊपर उठाये तथा आलीढ्य मुद्रा में प्रदर्शित हैं।

उपरले दोनों हाथों में क्रमशः गदा तथा चक्र है। निचला दांया हाथ कटिभाग पर अवस्थित है। बांया निचला हाथ (खंडित) बांये पैर के घुटने के ऊपर रखा है, जिसमें आयुध अस्पष्ट है। सिरोभाग के ऊपर मुकुट, कानों में

कुंडल, गले में एकावली, ग्रैवेयक, मुक्तमाल, वक्षबंध, वनमाल, हाथों में कंकण, केयूर तथा कटिभाग में लिड़ियों वाली अलंकृत मेखला, अधोभाग में वस्त्र, पैरों में कड़े तथा नुपुर आदि विविध वस्त्राभूपणों से सुसज्जित हैं।

वाम पाद सनालकमल के ऊपर रखा है। नीचे करवद्ध नाग-नागी बैठे हुये आराध्य भाव में परिलक्षित हैं। प्रतिमा का दक्षिण पाद खंडित है। विवेच्य प्रतिमा का संपूर्ण कला-वैशिष्ट्य प्रभावोत्पादक है। समय, ई० ११वीं शती लगभग।

४. चतुर्भुज शिव-युग्म :—मंदिर के पार्श्व भाग में प्रयुक्त पाषाण खंड पर चतुर्भुज शिव-युग्म दो अलग-अलग दिशाओं में स्थानक मुद्रा में अंकित हैं। प्रतिमा की मुखाकृति में सौम्य भाव द्रष्टव्य है। सिरोभाग के ऊपर जटामुकुट, कानों में सर्पाकार कुण्डल, गले में त्रिवली, कंठहार, यज्ञोपवीत, हाथों के आभरण तथा वनमाल आदि धारण किये हैं। उपरला दाँया हाथ खंडित है। बांये हाथ में खट्वांग के साथ डमरू तथा माला है। नीचे का दाहिना हाथ वरदमुद्रा में तथा बांये हाथ में मंगल घट लिये हैं। कटिभाग में मेखला, अधोवस्त्र आदि परिलक्षित हैं। नीचे दांये पार्श्व में करवद्ध आराधक तथा बाईं ओर नंदी आसनस्थ है। दूसरे पार्श्व की शिव-प्रतिमा भी चतुर्भुजी है तथा उपरोक्त प्रकार का समान अंकन है। समय, लगभग ई० ११वीं शती।

५. रूपसुन्दरी तथा शिवलिंग अभिषेक फलक :—पाषाण खंड के दांये पार्श्व में आकर्षक भाव-भंगिमाओं सहित विविध अलंकरणों से सुसज्जित उन्मत सुन्दरी दर्पण में अपनी छवि का अवलोकन कर रही है। सामने की ओर एक परिचारिका अपने दायें हाथ को ऊपर उठाये है, जिसमें दर्पण है।

फलक के बांये पार्श्व में शैवोपासकों द्वारा शिव-लिंग के अभिषेक का दृश्य अंकित है। दोनों के हाथों में एक-एक मंगलघट है। एक उपासक का दाँया हाथ शिवलिंग के ऊपरी भाग का स्पर्श कर रहा है। घटों का मुख नीचे की ओर है। मध्य भाग में अधिष्ठान (जलहरी) के ऊपर शिवलिंग प्रतिष्ठापित है। विवेच्य शिलाखंड पर उपरोक्त दोनों शिल्पांकन कला की दृष्टि से विशेष महत्वपूर्ण हैं। समय, ई० ११ वीं शती लगभग।

उपरोक्त विवरण से ज्ञात होता है कि देवरी नगर तथा उसके आस-पास के स्थलों में प्राचीन स्मारकों, मंदिरों, शिल्पावशेषों तथा संग्रहीत विविध कलाकृतियों का कलागत विशेषताओं सहित सांगोपांग विवेचन नितान्त आवश्यक है। देवरी नगर के समीपवर्ती स्थलों में मध्यकालीन शैव, वैष्णव; शाक्य तथा जैन धर्मों से सम्बन्धित पाषाण-कलाकृतियों का प्रचुर संग्रह है, है, जिन पर तत्कालीव कलाकारों ने प्रकृति तथा मानव-जगत् को सौन्दर्य-

राशि का रोचक चित्रण प्रस्तुत किया है। कतिपय पाषाण-स्तम्भों पर लता, पुष्प तथा शृंगार और सौन्दर्य का सजीव चित्रण मिलता है। उपरोक्त कलावशेष धार्मिक इतिहास के साथ-साथ क्षेत्रीय लाक्षणिक विशेषताओं तथा ललित कला के बहुविध अंकनों सहित धार्मिक तथा लौकिक तत्वों से अभिभूत हैं, जिनका समन्वयात्मक विकास मध्यकालीन कला के उन्नयन में विशेष रूप से महत्वपूर्ण है। यहाँ के शिल्प-विधान में चंदेल कलाशैली का विकसित स्वरूप देखने को मिलता है। उपर्युक्त विवरण के आधार पर यह कहा जा सकता है कि विवेच्य क्षेत्र अपने वैभव काल में निस्संदेह सांस्कृतिक परम्परा का उल्लेखनीय केन्द्र रहा है। यहाँ अव्यवस्थित फैली हुईं समग्र कला-राशि के संरक्षण की नितांत आवश्यकता है।

ई० १३वीं शती के पश्चात् विवेच्य क्षेत्र गोड़, मराठा आदि शासकों के आधिपत्य में रहा। चंदेल शासकों ने इस नगर की सुरक्षा हेतु यहाँ दुर्ग (किला) का निर्माण कराया, जो आज भी विद्यमान है। परवर्ती कालों के विविध स्मारक तथा भग्नावशेष यहाँ देखे जा सकते हैं। आज भी परम्परागत देवरी नगर विविध सांस्कृतिक उत्सवों-आयोजनों के लिये सुप्रसिद्ध है।

———

संदर्भ ग्रन्थ सूची

१—वाजपेयी, के० डी० : सागर थ्रू दि एज़ेज, प्राचीन भारतीय इतिहास, संस्कृति तथा पुरातत्व विभाग, सागर विश्वविद्यालय, सागर, १६६४, पृ० ३४.

२—व्ही० एस० कृष्णन् (संपादक) : मध्यप्रदेश डिस्ट्रिक्ट गजेटियर्स-सागर, (भोपाल, १६७०, पृ० ५२५-२७)

३—शर्मा, आर० के० : मध्यप्रदेश के पुरातत्व का संदर्भ ग्रन्थ, हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, भोपाल, १६७४, पृ० २८२.

४—वाजपेयी, सुरेशचन्द्र : सागर जिला की प्राचीन वास्तु एवं मूर्ति कला का अध्ययन (अप्रकाशित पी० एच० डी० शोध-प्रबंध पुरातत्व विभाग, सागर विश्वविद्यालय, १६७६, पृ० ५८-५६)

३, जनता क्वार्टर, पद्माकर नगर के समीप, सागर (म०प्र०)

कला शिल्प का अप्रतिम केन्द्र—भरहुत

● अनवर खान गोरी

वर्तमान बुन्देलखण्ड जो प्राचीन काल में चेदि, वत्स, दशार्ण जेजाकमुक्ति आदि नेक नामों से जाना जाता था, ईसा-पूर्व द्वितीय शती से ही, न केवल राजनीतिक क्षेत्र में, अपितु संस्कृति की विविध दिशाओं में प्रचुर पुरातत्वीय अवशेषों से सम्बद्ध है, जिससे यहाँ की संस्कृति पर प्रभूत प्रकाश पड़ता है।

ललित कलाओं के उद्‌भव तथा विकास की दृष्टि से बुन्देलखण्ड क्षेत्र का, भारतीय इतिहास में महत्वपूर्ण योगदान रहा। वास्तुकला, चित्रकला तथा मूर्तिकला का इस भू-भाग में आद्यैतिहासिक काल से लेकर मध्य काल के अन्त तक अनेक रूपों में विकास हुआ। इसका प्रमाण वे बहुसंख्यक स्मारक, स्तूप चित्र तथा मूर्तियाँ है, जो बुन्देलखण्ड के विभिन्न स्थानों से प्राप्त हुई हैं।

भरहुत और सांची के स्तूप प्रारम्भिक भारतीय कला के दो स्तम्भ हैं, जिनके द्वारा प्राचीन जन-जीवन की मानवीय गतिविधियों तथा कला परम्पराओं को देख सकता है। ऐसा प्रतीत होता है कि इन्हें आधार बनाकर ही कालान्तर में भारतीय कलाविदों ने भारतीय कला के विकास क्रम को आगे बढ़ाया होगा। इनमें से भरहुत स्तूप सत्ता की नागोद तहसीलांतर्गत, सत्ता से दस मील दक्षिण, सतना-अमरपाटन मार्ग पर टोंस नदी पर स्थित है। यहाँ पर मध्य रेलवे उचेहरा स्टेशन से भी पहुँचा जा सकता है। इस महानगर का इतिहास जिसके ध्वंसावशेष १२ मील की परिधि में बिखरे पड़े हैं। इस स्थान में महास्तूप के निर्माण का कारण संभवतः तत्कालीन भौगोलिक स्थिति रही होगी, क्योंकि यह स्तूप प्रसिद्ध बौद्ध तीर्थों के मार्ग पर अवस्थित था जो दक्षिण में उज्जैन और भेलसा (विदिशा) के मध्य, उत्तर में कोशाम्बी और श्रावस्ती, तथा पूर्व में पाटलीपुत्र (पटना) तक के मार्ग से जुड़ा था। भरहुत उत्तर से दक्षिण और पूर्व से पश्चिम जाने वाले महापथों से जुड़ा हुआ था। संभवतः प्रयाग को उज्जैनी से जोड़ने वाला व्यापारिक मार्ग इसी क्षेत्र से होकर जाता था, जिसके मार्ग में भरहुत, एरण आदि प्रमुख नगर पड़ते थे।

स्तूप का निर्माण तत्कालीन सामाजिक और धार्मिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये किया गया। यहाँ प्राप्त अभिलेखों से ज्ञात होता है कि इसके निर्माण में अनेक छोटे बड़े ग्रहस्थों ने भाग लिया. ये दानकर्ता कौशाम्बी, विदिशा, पाटलिपुत्र, मथुरा, नासिक आदि नगरों से आये थे। इससे यह स्पष्ट होता है कि इन श्रद्धालुओं ने ऊपर वर्णित यात्रापथों का अवलम्बन किया होगा।

भरहुत स्तूप के ध्वन्सावशेष १८७३ ई० में महान पुरातत्ववेत्ता कनिंघम द्वारा खोजे गये। उस समय तक स्तूप के एक बड़े भाग का उपयोग ग्राम-वासियों के द्वारा ग्रह-निर्माण में कर लिया गया था, तथापि १८७४ ई० में स्तूप की अधिकांश वेदिका प्राप्त करने में सफलता मिल गई। कनिंघम भरहुत वेदिका के ८० स्तम्भों में से ४८ स्तम्भ और ४० उष्णीष में से १६ उष्णीष ही प्राप्त कर सका। वर्तमान समय में भरहुत के बहुसंख्यक पाषाण कलावशेष कलकत्ता के भारतीय संग्रहालय तथा प्रयाग एवं राम वन (जिला सतना) के संग्रहालयों में सुरक्षित हैं।

स्तूप और उसकी वेदिका की निर्माण तिथि के संबंध में एक सर्वमान्य मत नहीं है, तथापि यह निश्चित है कि उसका निर्माण एक समय में नहीं हुआ। श्रद्धालुओं की आवश्यकताओं और धार्मिक साधनों की सुलभता के अनुसार समय-समय पर उसमें परिवर्द्धन हुआ। कनिंघम[1] का विचार था कि ईंटों से निर्मित मूल स्तूप का निर्माण मौर्य काल में हुआ, किन्तु बेदिका में उत्कीर्ण भाषा सम्राट अशोक के शिलालेखों में प्रयुक्त भाषा से मेल न रखने के कारण कनिंघम का मत अमान्य हो गया है। डा० बेनी माधव[2] के मतानुसार स्तूप का निर्माण तीन बार में हुआ—प्रथम बार प्राग् शुंग युग में और दो बार शुंग युग में, तो भी प्राग् शुंगयुग में इसका निर्माण अशोक के शासन काल में न होकर किसी भी परवर्ती मौर्य शासक के समय में हुआ होगा। इस संदर्भ में स्तूप के पूर्वी द्वार के बायें स्तम्भ पर उत्कीर्ण निम्नलिखित ब्राहमी लिपि में लेख उल्लेखनीय है—

शुगनम राजे रञजनो भागी पुत्स विसदेवस,
पोतेण गोती पुत्स आगरजस पुतेणस,
वाच्छिपुतेन धन भूतिना काटितम तोरणम,
सिला कम्भ मता च उप माननो[3],

१. कनिंघम, आर्क्योलाजिकल सर्वे रिपोर्ट, जिल्द ७, पृष्ठ १६६-७०
२. डा० बेनी माधव, मध्यप्रदेश के बौद्ध तीर्थ, पृष्ठ १४
३. बरुआ एण्ड सिन्हा, भरहुत इन्सक्रिप्शन्स, पृष्ठ ७७

अर्थात् शुंगों के राजकाल में प्रस्तर से उत्कीर्ण इस तोरण का निर्माण गौतमी पुत्र अंग्रेज के पुत्र एवं राजा, गर्गी पुत्र विश्वं देव के पौत्र धनभूति द्वारा किया गया।

उक्त लेख से इस बात की पुष्टि होती है कि तोरण-द्वार का निर्माण शुंग काल में पूरा हुआ है। शुंग राज्य की नीव पुष्य मित्र शुंग ने ई० पूर्व १८४-८५ में डाली थी पुष्य मित्र शुंग का उल्लेख स्तूप के किसी चित्र या लेख में न होना इस बात की पुष्टि करता है कि उसके (पुष्यमित्र शुंग) उत्तराधिका-रियों ने ही इस स्तूप निर्माण में सहयोग दिया होगा। अतः भरहुत स्तूप का निर्माण काल क्रम से २१००-२२०० वर्ष पूर्व का पड़ता है। कुल्हर और कनिंघम ने इस तोरण की निर्माण-तिथि १५० ई० पूर्व मानी है।

भरहुत कला यद्यपि कला की दृष्टि से बहुत विकसित नहीं है और न ही इसे विशुद्ध भारतीय कला की संज्ञा दी जा सकती है जैसा डा० कन्हैया लाल[1] अग्रवाल मानते हैं। उस युग की कला की विशेषता यह थी कि उसमें पश्चिमी कला का सामंजस्य था तथा भारतीय कला अधिकांश जन-समूह के मानस सांस्कृतिक आदेश तथा उसकी परम्परा का प्रतिनिधित्व करती थी।[2] उस युग की भारतीय मूर्ति-कला अपने युग के जन-जीवन का चित्रण बड़े ही सरल रूप में प्रस्तुत करती है। भरहुत स्तूप तत्कालीन भारतीय मूर्ति-कला का एक ऐसा कला केन्द्र है, जहाँ २१०० वर्षों के पूर्व के भारतीय जन-जीवन के दिन-प्रति दिन का सजीव चित्र अंकित है[3] और उसमें विकास के लक्षण स्पष्ट देखे जा सकते हैं। इसमें चपटापन है, भार या स्थूल तत्व प्राधान्य और गहराई का अभाव है। कला-चित्रण में संकेतात्मकता का अभाव है। शिल्पों की गहराई न होने के कारण लम्बाई और चौड़ाई द्रष्टव्य है। दूरी प्रदर्शन जो आधुनिक कलाकारों की विशेषता है, का यहाँ की कला में सर्वथा अभाव है। अतः एक ही पंक्ति में खड़े दो व्यक्तियों में से आगे खड़े होने वाले को छोटा नहीं दर्शाया गया। कलाकारों ने प्रतिमाओं का आकार व्यक्तियों की सामाजिक और राजनैतिक प्रतिष्ठानुसार निर्धारित किया है।[4] उदाहरणार्थ

१ डा० कन्हैया लाल अग्रवाल, भरहुत कला, मध्यप्रदेश संदेश, १९६८ पृष्ठ ६
२. डा० वासुदेश शरण अग्रवाल, भारतीय कला पृष्ठ १८१
३. डा० जे० एन० बनर्जी, डेब्लपमेन्ट आफ हिन्दू आईनोग्राफी, पृष्ठ ३६४-३६५.
४. उमाकान्त पी शाह, स्टडीज इन जैन आर्ट, पृष्ठ ४०.

राज्र की प्रतिमा साधारण आदमी की अपेक्षा आकार में बड़ी है। इसी प्रकार एक साधारण आदमी की प्रतिमा का आकार एक बच्चे से बड़ी है। प्रायः सभी प्रतिमाओं पर लेख अंकित हैं। जातक कथाओं के लेख ब्राह्मी लिपि में है। भरहुत कला में बौद्ध धर्म का प्राधान्य है, तथापि बुद्ध की प्रतिमा का एक भी शिल्प अप्राप्त है। बुद्ध के जीवन को केवल संकेतिक चिह्नों से ही प्रदर्शित किया गया लोक जीवन का चित्रण यहाँ की कला की विशिष्टता है।

भरहुत कला में उत्कीर्ण कला शिल्प सम्बन्धित अंकन को चार भागों में विभक्त किया जा सकता है।

जातक कथाओं का अंकन :

बुद्ध के पूर्वजन्म की कथायें जातक कहीं जाती हैं। प्राचीन समय में ये कथाएँ लोकप्रिय थीं। भरहुत कला में निम्नांकित जातक कथाओं का अंकन प्राप्त होता है। मिग, नाग, मुग्ग, कप्पय, लटुवा, छदन्ती, इसिसिगीय, विदुर पंडित यम्तुमनोवयसी, वुरूगमिग, हंस, कित्तर, असदृश, दशरथ, उद्, सेच्छ, सुजातो हुगतो, कुक्कट, मगदेवियाँ मिसहरिनी, गजसस, वैसत्तर और चम्पेय, इनमें नाग और चम्पेय जातकों का अभिज्ञान प्रथम बार सागर वि० वि० के भूतपूर्व अध्यक्ष प्रो० के० डी० वाजपेयी ने किया है। अधिकांश जातकों के नाम व्राह्मी लिपि में उत्कीर्ण हैं।

गोतम बुद्ध से सम्वन्धित दृश्य :

यद्यपि भरहुत के शिला-चित्रों में कहीं भी महात्मा वुद्ध की मूर्ति अंकित नहीं को गई है, तथापि इसके चित्रों में धर्मचक्र, स्तूप तथा वुद्ध की चरण पादुकाएं मिलती हैं। इसके साथ ही बोधी वृक्ष को भी पूजा की वस्तु माना गया है। इससे यह प्रमाणित होता है कि महात्मा बुद्ध की मूर्ति पूजा शुंगकाल के पश्चात् प्रचलित हुई। भरहुत कला में वुद्ध से सम्वन्धित दृश्यों का अंकन निम्नलिखित रूप में हुआ है। स्तूप, धर्मचक्र, बोधि वृक्ष, चरणपादुका, चूड़ा, उष्णीप, त्रिरत्न आदि वौद्ध चिह्नों का अंकन पर्याप्त मात्रा में मिलता है। एक स्थान पर माया (वुद्ध की माँ) का स्वप्न रोचक ढंग से अंकित है। शिल्प में एक हाथी स्वर्ग से उतर कर उसके गर्भ में प्रवेश करता हुआ दिखाया गया है। उत्तरी तोरण द्वार के वाहरी खम्भों पर तीन पंक्तियों में वुद्ध के जीवन-दृश्य उत्कीर्ण हैं यथा राजा अजात शत्रु द्वारा वुद्ध का दर्शन द्रष्टव्य है। उपर्युक्त अंकनों के अतिरिक्त सम्बोधित प्रथम प्रवचन और महापरिनिर्वाण के दृश्य अत्यन्त मनोरम ढंग से दर्शाये गये हैं।

यक्ष यक्षी और नाग-नागी प्रतिमाएँ :

भारत में यक्ष और नाग पूजा बहुत प्राचीन है। प्राणों से ज्ञात होता है कि सबसे पहले यक्ष पूजा ही प्रचलित थी। कालान्तर में यक्ष का स्थान शिव ने ग्रहण कर लिया। भरहुतशिल्प में यक्षों और नागों का अंकन वड़े पैमाने पर हुआ है। लोक जीवन में इनकी पूजा का व्यापक प्रचार था। ऐसा प्रतीत होता है कि भरहुत का महा स्तूप ऐसी जनता के संरक्षण में निर्मित हुआ, जो यक्ष मत की पुजारी थी। उसके द्वारा यक्ष और यक्षों की मूर्तियाँ तोरण द्वारों और वैदिका स्तम्भों पर निर्मित कराई गई। उनमें से कुछ पर उनके नाम उत्कीर्ण हैं। कुपिटो यखों (कुवेर यक्ष), यखी सुदरसनों (यक्षी सुदर्शन), सुचिलोमों यखो (सुचिलोम यक्ष), महाकोला और कुल कोला नामक दो यक्ष देवियाँ। भरहुत में जल में से निकलते हुये एरापत नागराज को सापरिवार वोधिवृक्ष की पूजा करते हुये दिखाया गया है। उसके मानव मस्तक पर फणावली है। प्रयाग संग्रहालय वटवृक्ष के नीचे पाँच फन वाले मुचलिन्द नाग की मूर्ति है। शिल्प में मुचलिन्द को बुद्ध की पादुका और बोधिवृक्ष की रक्षा करता हुआ अंकित किया गया है। अनुश्रुति है कि एक बड़ी आँधी के समय मुचलिन्द ने बुद्ध की रक्षा अपने फन को फैलाकर की थी। स्तूप के दक्षिण तोरण द्वार स्तम्भ पर चक्रवाक नाग की आकृति उत्कीर्ण है।

यक्ष यक्षियों और नाग नागियों के अंकन के अतिरिक्त भरहुत में शालभंजिकाओं का चित्रण अत्यन्त मनोरम है। उनको वृक्ष की डाल पकड़े हुए अंकित किया है। कहीं-कहीं वे पुष्प तोड़ते हुये भी उत्कीर्ण की गई है। उपर्युक्त अंकन से प्रतीत होता है। देव तथा देवियों का चित्रण धार्मिक एकता को स्थापित करने हेतु किया। धर्म केवल सन्यासियों तक ही सीमित न रह जाये, अतः कलाकारों ने सौंन्दर्य तत्व का सहारा लेकर ग्रहस्थियों का ध्यान धर्म की ओर आर्कषित किया। इसका एक प्रमुख कारण यह भी था कि ग्रहस्थ ही उन्हें स्तूप-निर्माण हेतु प्रचुर द्रव्य प्रदान करते थे।

अन्य दृश्य

कला को मनोहारी बनाने के लिये विविध प्रकार के पशु, पक्षियों और लताओं का अंकन किया गया था। पशुओं में स्वाभाविक और कल्पित दोनों प्रकार के मिलते हैं। कल्पित पशुओं में आकाशपक्षी, अश्व, गजमच्छ, मगरमच्छ, मछली की पूंछ के साथ मगर की आकृति के अतिरिक्त और १४ प्रकार के पशु है। छः प्रकार के पक्षी सर्प, मकर, घोंघा, मेंढक, उत्कीर्ण किये गये हैं। पशुओं में हाथी, अश्व, सिंह, गेड़ा, भेड़िया, बिल्ली, कुत्ता, जंगली बकरी,

मृग, खरगोश, गिलहरी, पक्षियों में कुक्कट, सुग्गे, मोर, जंगली बतख, हंस तथा बटेर अंकित है। यहाँ पर बन्दर, हाथी और मनुष्यों को अनेक मनोरम दृश्यों में दिखाया गया। ऐसे ही एक दृश्य में एक यक्ष छोटे मूढ़े पर आसीन है। उसने सिर पर एक भारी पगड़ी बाँध रखी है। उसका चेहरा गलमुच्छों से युक्त है। कुछ बन्दर कहीं से सड़ली ले आये हैं, जिसे एक हाथी झटका देकर खींच रहा है और उससे यक्ष की नाक का बाल उपटता जा रहा है।[1]

कुछ विद्वानों का मत है कि सड़ली से यक्ष का दाँत उखाड़ा जा रहा था[2]। दो दृश्यों में कुछ बन्दर एक जंगली हाथी को पकड़कर मोटे रस्से से बाँधे ले जा रहे हैं। बन्दर और मनुष्य का मल्ल युद्ध भी दर्शनीय है।[3] एक अन्य दृश्य में, एक अन्य महासामुद्रिक जन्तु का चित्र अंकित है। इसी प्रकार नटों के खेल वाला दृश्य द्रष्टव्य है। इसमें आठ नटों को बाजीगरों का खेल दिखाते हुये अंकित किया गया है। कुछ स्थानों पर बन्दर को हिस्सा-बाँट करते हुये दिखाया गया है। मेलों के कई दृश्य हैं। एक स्थान पर सुधर्मी देव सभा अंकित हैं। नीचे स्त्रियाँ नृत्य मुद्रा में चित्रित हैं। इसमें वंशी, वीणा, मृदंग आदि कई प्रकार के यंत्रों का चित्रण किया गया है। इसी प्रकार जन-जीवन से सम्बन्धित अन्य दृश्यों में एक बाजार का चित्रण है, जिसमें बहुत सी दुकानें हैं। भोजन बनाने और साधारण मनुष्यों का चित्रण भी दर्शनीय है। एक अन्य स्थल पर मकान के बीच परम्परागत भारतीय आंगन अंकित है। इसमें एक स्त्री जो सम्भवतः गृहणी है, एक बड़ी टोकरी का सामान छोटी टोकरी में खाली कर रही है। एक जगह पर एक स्त्री अपनी झोपड़ी से बातें करती हुई बाहर दो व्यक्तियों की बातों को सुनने के लिए झाँक रही है।

शुंगकाल में औषधि विज्ञान में पर्याप्त उन्नति कर ली थी। जातक कथाओं से ज्ञात होता है कि एक बार बोधिसत्व चर्म रोग से पीड़ित हुये, तो उनके उपचार के लिए इन्द्र ने गंधमादन पर्वत से जड़ी एकत्र की थी। भरहुत शिल्पों में एक ऐसा दृश्य अंकित है, जिसमें एक थैले में एक व्यक्ति को जो सम्भवतः वैद्य होगा, औषधि एकत्र करते हुए दिखाया गया है।

भरहुत कला में कुछ वृक्षों का चित्रण अत्यन्त मनोरंजक है। इन वृक्षों में वट-वृक्ष का अंकन व्यापक मात्रा में हुआ है, क्योंकि वटवृक्ष सभी इच्छाओं की

१. डा० वासुदेव शरण आग्रवाल, भारतीय कला, पृष्ठ १७५

२. डा० काला, भरहुत बेदिका, पृष्ठ ११

३. कुमार, हिस्ट्री ऑफ इण्डिया एण्ड इण्डोनेसियन आर्ट पृ० १३,१४.

पूर्ति करने वाला माना गया है। इस प्रकार के वृक्षों का वर्णन उत्तर कुरू की प्रशंसा में आता है। ऐसा प्रतीत होता है कि जनता उत्तर कुरू के दर्शन हेतु लालायित रहती थी। इसलिये इसका अंकन बहुतायत से किया गया।[1] महावणिक जातक और रामायण (किष्किन्धा)[2] में इस वृक्ष का सविस्तार वर्णन है। अन्य वृक्षों में वट उदुम्बर, शाल शिरीष, पीपल, आम, कटहल, केर और लताओं में कमल और अंगूर का चित्रण है।

वर्तमान स्थिति

भरहुत का प्राचीन रूप लुप्त हो चुका है। आज वहाँ पर स्तूप तथा बिहार का कोई चिन्ह शेष नहीं है। भरहुत नाम का एक ग्राम अब भी सतना के पास मौजूद है और वह लाल पहाड़ भी स्थित है जिसकी ढालन में स्तूप बना हुआ था। इसी लाल पहाड़ से वह सुन्दर लालिमा लिया हुआ पत्थर निकाला गया होगा जिस पर शुंगकालीन शिल्पकारों ने सुन्दर शिला चित्र अंकित किये थे।

इस प्रकार हम देखते हैं कि कलाकारों ने लोक जीवन से सम्बन्धित अनेक दृश्य भरहुत कला में अंकित किये थे। एक ओर यहाँ मगधराज अजात शत्रु का चित्रण किया गया है, वहीं दूसरी ओर साधारण मनुष्यों, बाजारों, नटों और हास्य के अनेक दृश्यों का चित्रण मिलता है।

शोध छात्र,
प्राचीन भारतीय इतिहास
संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग
सागर विश्वविद्यालय, सागर

१. महावणिक जातक, (४९३ पृष्ठ ३५१-५२)

२. रामायण किष्किन्धा काण्ड, पृष्ठ ४३.

मेरे पुस्तकालय की पाण्डुलिपियां

● ब्योहार राजेन्द्रसिंह

यांत्रिक मुद्रण प्रारंभ होने के पूर्व मध्यकालीन राजा-महराजा व रईस सदैव अपने घरेलू पुस्तकालय में प्राचीन कवियों द्वारा लिखित काव्यों और शास्त्रों की प्रतिलिपियां कराकर अपने पास रखते और अवकाश के समय उनके द्वारा अपना ज्ञानवर्धन और मनोरंजन किया करते थे। इस कार्य के लिए राज-दरबारों में वेतनभोगी लेखक नियुक्त रहते थे, जो की यही कार्य किया करते थे। जिनके अक्षर सुडौल व सुन्दर होते थे, वे ही लोग इस कार्य के लिए नियुक्त किये जाते थे।

भर्रू या किलक की लम्बी-लम्बी शाखाएं जमा रहती थीं और उन्हें काटकर कलमें बनाई जाती थीं। इन कलमों को बड़ी सावधानी से तराश कर पतले या मोटे अक्षर लिखने के योग्य बनाया जाता था। लिखने के लिए काजल आदि पदार्थों से स्याही बनाई जाती थी। (जैसा कि इस शब्द से ही स्पष्ट है कि) वह स्याही काली ही होती थी, साथ ही लाल और पीली स्याही बनाई जाती थी। अच्छी तरह घोंटकर इसे चमकदार बनाया जाता था।

इस प्रकार के हस्तलिखित ग्रन्थ दतिया, छतरपुर और रीवा, रामनगर आदि के पुस्तकालय में प्रचुर मात्रा में संग्रहीत मैंने देखे हैं। रीवा के महाराजा स्वयं कवि होने के कारण इस विद्या में रुचि लिया करते थे। काशीनरेश सेठ स्व० प्रभु नारायण सिंह इस विषय में बड़ी रुचि लेते हैं। स्वयं रामनगर के विशाल पुस्तकालय में बैठकर इन पाण्डु-लिपियों की व्यवस्था करते मैंने स्वयं देखा है। वृन्दावन में जब पाण्डु-लिपियों की खोज की, तो वहां भी गोसाईंयों के पास सुन्दर पाण्डुलिपियां देखने को मिलीं। यद्यपि गोस्वामी लोग बडी कठिनाई से इन पाण्डु-लिपियों को अपनी तिजोड़ी से बाहर निकाल कर दिखलाते थे। उनकी प्रतिलिपि करने की अनुमति तक नहीं देते थे। राधा वल्लभ सम्प्रदाय के गोस्वामी सोहनकिशोर जी अपने शिष्य वर्ग के पास जबल पुर आया करते थे। हम लोग भी वृन्दावन जाया करते थे, इस संबंध के कारण कुछ दुर्लभ पाण्डुलिपियां मुझे प्राप्त हो सकीं। मेरे पिता जी भी बड़े विद्या व्यसनी थे। उनके पास संस्कृत, फारसी तथा वृजभाषा की पाण्डुलिपियां

सुरक्षित थीं। वे भी लेखकों द्वारा उनकी प्रतिलिपियाँ कराया करते थे। बही-खाते भी उसी प्रकार के स्याही से लिखे जाते थे। वे कलम बनाने की भी विशेष कला में पारंगत होते थे। निब और फाउन्टेन पेन के प्रचलन के पूर्व हम लोग भी इन कलमों से लिखा करते थे। जब तक उनसे लिखा, मेरे अक्षर भी सुन्दर रहे थे। फाउन्टेन पेन से लिखने के बाद अक्षर इतने बिगड़े की अपनी लिखावट भी पढ़ना कठिन हो गया।

मेरे पास जो पाण्डुलिपियाँ सुरक्षित हैं, उनकी स्याही आज भी चमकदार बनी हुई है। अक्षर भी मोती के समान सुडौल हैं और कागज भी बड़ा मजबूत और सुन्दर है। वह कागज पंचमनगरी कहलात था। पंचमनगर नामक ग्राम में वह कपड़ों के रेशों को कूट-कूट कर अच्छी तरह घोंटकर बनाया जाता था। लेखन स्याही और कागज बनाने की कलाएँ लुप्तप्राय हो गई हैं। लाल स्याही से शीर्षक व पीली स्याही से हरताल लगाई जाती थी। आज भी वे ज्यों के त्यों रखे हुए हैं। ऐसा लगता है मानों यह आज ही लिखी गई हों। यद्यपि १०० से १५० वर्ष पूर्व लिखी गई थी। उनको देखते ही तबियत प्रसन्न हो जाती है।

यहाँ पर कुछ पाण्डुलिपियों का परिचय देना आवश्यक है। संगीत शास्त्र के महत्वपूर्ण ग्रन्थ राग माला हैं। इसमें संस्कृत में राग-रागिनी के लक्षण वर्णित हैं। इसे समझाने के लिए संस्कृत में टिप्पणियां भी दी गई हैं। इस ग्रन्थ पर अनुसंधान होना चाहिये।

श्रुश्रुत सार नामक ग्रन्थ संस्कृत ग्रन्थ है। यह संस्कृत ग्रन्थ वैद्यक पर है, उस पर हिन्दी में टीका भी लिखी गई है। इसी के साथ वृहत् योग तरंगिनी भी जुड़ी हुई है, जिसमें औषधियों का वर्णन है। एक जिल्द में छः ग्रन्थ संकलित हैं :—इनमें रसश्रृङ्गार में श्रृङ्गार सार सम्बन्धी कवियों का संग्रह है। इसकी पृष्ठसंख्या १६५ है।

दूसरा ग्रन्थ है गीत चिंतामणि। इसमें प्राचीन कवियों द्वारा रचित गीत संग्रहीत हैं। तीसरा ग्रन्थ है पदमारत्न। इसमें भी सुन्दर पदों का संग्रह है। बिहारी सतसई से सभी पाठक परिचित हैं। भगवतगीता का सुन्दर दोहानुवाद हरिवल्लभ मिश्र ने किया है। अगरदास कवि की सुन्दर कुण्डलियां इसमें पढ़ने लायक हैं।

दूसरी प्रतिलिपि है विरहवारीश माधवारग्न अथवा विक्रम विलास नाटक। इसे बोधा कवि द्वारा लिखा गया है। एक सौ चालीस पृष्ठों में हमारे जिले जबलपुर के बिलहरी ग्राम में घटित माधवमल्ल की प्रसिद्ध प्रेम-कहानी इसमें वर्णित है। इसकी प्रतिलिपि संवत् १८३० में की गई थी।

जगदीश शतक में महाराज रघुराजसिंह द्वारा रचित सौ श्लोकों का संकलन है। नागरीदास के दोहे ६६ पृष्ठों में एक पाण्डुलिपि में संग्रहीत है। ये दोहे नागरीदास ग्रंथावली में प्रकाशित हो चुकी है। कवि मतिराम का रसराज भी प्रसिद्ध ग्रंथ है, जो कि संवत् १८४८ में इस पाण्डुलिपि में लिखित है।

मंत्र संग्रह एक छोटा सा ग्रंथ है जिसमें मारण, वशीकरण आदि संबंधी मंत्रों का संग्रह है। वैद्यक संबंधी एक संस्कृत ग्रंथ का पांडुलिपि भी है, जिसमें नाम नहीं दिया गया है। इसके साथ ही अजीर्ण मंजरी छोटा सा ग्रन्थ भी सम्मिलित है। कवि वासदेव कृत सतश्लोकी में संस्कृत के सुन्दर पदों का संग्रह है। समय प्रबंध में ब्रजभाषा के विभिन्न कवियों के पदों का संग्रह है जो कि मंदिरों में उत्थान, राजभोग और शयन के समय गाये जाते हैं। इनका लेखन काल संवत् १६५० है।

पृथ्वीराज रासो चंद कवि का प्रसिद्ध ग्रन्थ है। इसकी प्रतिलिपि संवत् १८३२ में की गयी थी। यह ग्रन्थ पृथ्वीराज रासो के थोड़े से प्रसंगों का ही संकलन है। वैद्य जीवन संस्कृत में वैद्यक संबंधी ग्रंथ है, जिसकी प्रतिलिपि संवत् १६२३ में की गई थी।

बिहारी सतसई की अमर चन्द्रिका टीका जोधपुर के महाराजा अभयसिंह के समय सूरत मिश्र नामक कवि ने की थी। यह ग्रंथ ११६ पृष्ठों में समाप्त हुआ है। इसकी प्रतिलिपि जबलपुर ग्राम में संवत् १६०३ में की गई थी। यह विवरण इस टीका के अंत में अंकित है।

आनंद रस नामक पाण्डुलिपि की प्रतिलिपि दयानाथ दुबे ने जबलपुर में संवत् १६२१ में की थी। रस पंचाध्यायी कवि नंददास का प्रसिद्ध ग्रंथ है, इसकी प्रतिलिपि संवत् १७५४ में की गयी थी।

एक जिल्द में तीन ग्रंथ संग्रहीत हैं। जुगलकेलि रसमाधुरी, रूपकंचनी, उपनामधार देवकीनंदनदास ने इसे लिखा था। इसके अंत में लिखा है— 'सवाई जयपुर मध्ये वाचनार्थ।' इसी के साथ जुगल रहस्य सिद्धांत ब्रजभाषा ग्रन्थ है, जिसमें राधा-कृष्ण के श्रृङ्गार का वर्णन है।

एक ग्रंथ है पदराग, इसमें भी भक्ति सम्बन्धी पदों का संग्रह है। इसकी पांडुलिपि की लेखन तिथि संवत् १८११ अंकित है।

कोलिकार्जन दीपिका संस्कृत ग्रंथ है, जिसमें तांत्रिक पद्धति का वर्णन है, इसकी प्रतिलिपि संवत् १६२६ में की गई थी। अंकबतीसी, अक्षर अनन्य कवि का प्रसिद्ध ग्रंथ है, जिसकी प्रतिलिपि संवत् १८११ में की गई थी। इसके साथ उनका चिट्ठा नामक ग्रंथ भी संकलित है।

कवि मतिराम की रसराज नामक प्रसिद्ध ग्रंथ की टीका वख्तेश कवि ने ब्रजभाषा गद्य में की है, जोकि १८३ पृष्ठों में लिखित है। लिपिकार का नाम लाला कामता प्रसाद जबलपुर निवासी दिया हुआ है। लेखकों ने संवत् १६२५ में जबलपुर में इसकी प्रतिलिपि की थी। यह टीका अभी तक अप्रकाशित है।

सबलसिंह चौहान ने ब्रजभाषा में महाभारत पर जो ग्रंथ लिखा था, उसके कर्ण के पर्व के पांच अध्यायों की प्रतिलिपि एक पांडुलिपि में की गई है। सुन्दर अक्षरों में गोस्वामी तुलसीदास द्वारा रचित कवितावली की पाण्डुलिपि भी सुरक्षित है।

उक्त पाण्डुलिपियों में से कई प्रसिद्ध-ग्रंथों का प्रकाशन भी हो चुका है, जैसे–बिहारी, बोधा, नागरीदास, मतिराम, नंददास तथा तुलसीदास के ग्रंथ। इनमें से कुछ ग्रंथ अभी तक अप्रकाशित हैं, जिन पर काम होना बाकी है। यदि उन ग्रंथों की पाण्डुलिपियां नागरी प्रचारिणी सभा या हिन्दी साहित्य सम्मेलन से प्राप्त हो सकें तो उनके द्वारा इनका सम्पादन किया जा सकता है।

—गांधीमंदिर, साठिया कुआँ, जबलपुर (म० प्र०)

जटिल जीवन की सहज कविता

● प्रमोद पाण्डेय

हमारा साहित्यिक जगत किस प्रकार के साहित्य और साहित्यकारों को मान-सम्मान और प्रतिष्ठा प्रदान करता है तथा किस प्रकार के साहित्य और साहित्यकार उपेक्षा के अंधकार में डूबे रह जाते हैं—यह किसी से भी छुपा हुआ नही है। श्री सुमित्र के कविता संग्रह को पढ़ने और उन असंख्य पुस्तकों को पढ़ने से जिन्हें शासन और साहित्यिक संस्थाओं ने पुरस्कारों, तमगों और फेलोशियों से मण्डित कर रखा है—यह बात और स्पष्ट हो जाती है।

संग्रह की लगभग प्रत्येक कविता कवि के मानसिक जगत को अत्यन्त सहज-आत्मीय ढंग से उजागर करती है। कवि ने संग्रह में कोई लम्बी-चौड़ी भूमिका न देकर मात्र कुछ पंक्तियों में कविता से अपने रिश्ते को और खुद से जीवन के रिश्ते को एक प्रकार से काव्यात्मक तरीके से ही व्यक्त कर दिया है।

कवि ने अपने व्यक्तित्व का निर्माण अमूर्त्त चिंतन की किसी अंधी गुफा में नहीं, बल्कि इसी छोटी सी दुनिया में किया है। उसका यह निवेदन अत्यन्त सार्थक है। "मेरी प्रतिबद्धता जीवन के प्रति है। जीवन में जो रोग-दोष, रूप-अरूप, दुख-दैन्य, मैत्री-करुणा, प्रेम, अभाव, द्वंद्व एवं संघर्ष है—वही मुझे कविता के द्वार तक ले जाता है।"

नवोदित कलमकारों के लिये इन शब्दों में बहुमूल्य शिक्षा भी निहित है। कवि अपनी छोटी सी दुनिया के प्रति वफादार हुये बिना समस्त मानवता के लिये भी वफादार नहीं हो सकता। मार्क्स ने एक स्थान पर लिखा था कि कला का मूल्य सर्वोपरि इस तथ्य से निश्चत होता कि वह स्वयं कितनी मानवीय है और उसमें आस्वादन करने वालों को कितना मानवीय बनाने की शक्ति है। यही तथ्य किसी भी कलाकृति को कालजयी बनाता है। होमर, शेक्सपियर, टालस्टाय, तुलसी, निराला जैसी प्रतिभाओं द्वारा सर्जित कलाकृतियों का चिर-यौवन इसी में निहित है।

लेकिन कलाकृति का मानवीय होना और पाठक या आस्वादक को मानवीय बनाना, उसे मानव-प्रेम के संस्कार देना भी सर्वोपरि इस बात पर निर्भर है कि रचयिता का दिल खुद किस रंग में रंगा हुआ है।

कवि सुमित्र का दिल दुखी और संघर्षशील, घायल किन्तु स्वस्थ होने के लिये पल-पल व्याकुल मेहनतकश अवाम के रंग में रंगा हुआ है।

कवि वेहिचक कहता है कि

> मैं,
> घरेलू कविताओं का कवि हूँ
> मेरा घर ही मेरी दुनिया है
> जहां पत्नी है,
> मुन्ना है मुनिया है। (पृष्ठ ४९)

लेकिन अपनी मुन्ना-मुनिया के प्यार में आकण्ठ डूबा हुआ कवि अपने घर की चार-दीवारी में कैद नहीं है। वह अपनी और अपने जैसे करोड़ों लोगों की गरीबी के रहस्य की खोज करता है क्योंकि जैसा कि महाकवि मुक्तिबोध ने कहा है कि मुक्ति के रास्ते अकेले में नहीं मिलते। वह इस रहस्य को पा लेता है—

> 'सिर फिरे नेताओं
> और पचहत्तर घरानों की खातिर
> करोड़ों लोगों को
> अभावों की भट्टी में झोंकना
> कहां का न्याय है?" (पृष्ठ ५२)

शुद्ध साहित्य, तटस्थता और इसी प्रकार की असंख्य कला-विरोधी प्रवृत्तियों के इस सरकारी-गैरसरकारी घटाटोप में भी कवि अपने काव्यासन से च्युत नहीं होता। वह इन कवियों कलाकारों की असलियत जानता है—जो आधुनिकता के नाम पर जन-जीवन से खुद तो कटे ही है—समूची उदीयमान साहित्यिक पीढ़ी को पथ भ्रष्ट करने का षणयंत्र कर रहे हैं—

> वह
> न किसी का बेटा है
> न पिता

न भाई न दोस्त
वह तो संत्रास में जी रहा है ।

× × × ×

अंततोगत्वा
'वह'
संत्रस्त होकर
निर्वस्त्र हो जाता है
और दीवार की ओर मुंह करके
जोर-जोर से चिल्लाता है ।'' (पृष्ठ ६२)

यह समझ में न आने वाली बात है कि कवि सुमित्र जैसा एक कोमल इंसान, अन्याय-अत्याचार के प्रति असहिष्णु कलाकार से हिन्दी जगत तो क्या खुद मध्य-प्रदेश में भी ठीक तरह परिचित नहीं हो सका है—जबकि कर्णधार अपनी सांस्कृतिक उपलब्धियों का ढोल पीटते अघाते नहीं हैं । यदि हर आदमी उतना ही मानवीय, उतना ही सम्वेदनशील, उतना ही न्याय प्रिय और उतना ही सत्य प्रेमी हो जाय जितना कि इस संग्रह का कवि है—तो सांस्कृतिक सेनापतियों का हवा-महल धसक जायेगा ।

मैं बिना किसी हिचक के हाथ उठाकर यह कह सकता हूँ कि मध्य-प्रदेश के गौरव के रूप में जिन कवियों को घर-घर पहुँचाने के लिये पत्र-पत्रिकाओं में प्रोजेक्ट किया जा रहा है, उनमें से कोई भी इस कविता-संग्रह के मानवीय सारतत्व से आँख नहीं मिला सकता है—चाहे भले ही उनने पश्चिम की कितनी ही नकल सीख ली हो और कितनी ही भूल-भुलैया ईजाद कर ली हो ।

यह कवि हमें अपनी जातीय परम्परा के सम्पन्न सरोवर में ला खड़ा करता है—और एक अच्छा इंसान बनने की प्रेरणा देता है । कवि में मुक्ति-बोध, परसाई की प्रांजल मानवतावादी धावा का ज्योतिमान एहसास छाया हुआ है जो जबलपुर का ही नहीं, मध्यप्रदेश और समूचे भारत को एक उपयोगी प्रदाय है ।

आने वाली पीढ़ियाँ इस कवि की चिता पर जरूर ही यह कहेंगी—
''हमारा पिता
दूसरों के लिये भी जिया था
वो सूरज नहीं-दिया था ।''

संग्रह की एकमात्र कमजोरी वे स्थल हैं जहाँ कविता राजनीतिक या सामाजिक वक्तव्य का रूप ले लेती है । ऐसे स्थलों पर कविता हमें मात्र सत्य की जानकारी देकर रह जाती है—वह मर्माहत नहीं करती । कविता को आखिरकार उसकी अपनी विशिष्ट अभिव्यक्ति प्रणाली ही अन्य साहित्य रूपों के अलग करती है । ऐसे स्थलों पर संग्रह की कलात्मकता खण्डित होती है और उसकी पाठक को तह-ए-दिल तक प्रभावित करने की समता घटती है । लेकिन कवि सुमित्र की काव्य-यात्रा समाप्त नहीं हुई है । इसमें कोई संदेह नहीं होना चाहिये कि इस जीवन-साधना से अभी और सुंदर-मीठे और स्वास्थ्य-वर्द्धक रसीले काव्य-फलों का सृजन होगा—काव्य प्रेमी जनता को निश्छल मानवीय सम्वेदना के अभी और पाठ हमारा कवि पढ़ने को देगा ।

कवि के मनोजगत में द्वंद्व की जो सक्रियता है वह बड़ी आशाप्रद और सम्भावनाओं से भरी हुई है ।

—यादों के नागपाश (काव्य-संकलन) : राजकुमार तिवारी 'सुमित्र' प्रकाशन: लोक चेतना प्रकाशन, जबलपुर (म० प्र०), मूल्य: दस रुपये ।

•

साहित्य-कला-संस्कृति समाचार

दमोह में सम्पन्न मानस परिचर्चा एवं समस्यापूर्ति संगोष्ठी, छतरपुर में आयोजित बुन्देली समारोह ८२; मामुलिया समीक्षा संगोष्ठियां; जबलपुर की सांस्कृतिक संध्यायें; झांसी में संगीत-संध्या, चित्रकार श्री विजय शंकर की चावल चित्रकला प्रदर्शनी एवं आल्हा और स्वांग पर शिविर।

मानस परिचर्चा एवं समस्यापूर्ति संगोष्ठी

दमोह। जिला हिन्दी साहित्य सम्मेलन दमोह के तत्त्वावधान में रामनवमी पर्व पर आयोजित मानस-परिचर्चा संगोष्ठी में डा० छविनाथ तिवारी और श्री मथुरा प्रसाद बादल ने बतलाया कि मानस ही एकमात्र ऐसा धर्म ग्रंथ है जो अशांत मन को भी शांति की खोज हेतु प्रेरित करता है। सर्वश्री मुकेश नायक और नारायण मिश्र ने कहा कि अनुशासन और श्रद्धा की भावनाओं से भी शाति मिलती है जो मानस के महत्त्वपूर्ण विषय और अंग है।

संगोष्ठी के दूसरे चरण में आयोजित 'नाक, औ कान कटाय के रैंहें', 'श्याम-राम है चरित उजागर' तथा 'युग बीते पर याद रहे' आदि समस्याओं की प्रभावी एवं रोचक पूर्तियां उपस्थित कवियों द्वारा की गई जिनकी सभी ने सराहना की। संगोष्ठी की अध्यक्षता श्री श्यामकिशोर मालवीय ने की तथा डा० महेश चतुर्वेदी ने आभार व्यक्त किया।

बुन्देली समारोह ८२

छतरपुर। ३, ४ व ५ अप्रैल ८२ को बुन्देलखण्ड संस्कृति कला परिषद के तत्त्वावधान में त्रिदिवसीय बुन्देली समारोह ८२ का आयोजन हुआ। इस समारोह में आयोजित तीन विचार संगोष्ठियों—(१) मध्यकालीन ऐतिहासिक संदर्भ और छत्रसाल, (२) बुन्देलखण्ड का इतिहास : विविध परिदृश्य, (३) बुन्देली भाषा और साहित्य में सर्वश्री डा० भागीरथ मिश्र, डा० कृष्णदत्त वाजपेई, डा० सुधाकर पाण्डेय (सागर), डा० महेन्द्र प्रतापसिंह (दिल्ली), डा० नर्मदा प्रसाद असारी (रायपुर), डा० रामाधार शर्मा (पन्ना), डा० महेन्द्र वर्मा, रामकुमार राही (झांसी), डा० यतीन्द्र तिवारी (बांदा), डा० गंगाप्रसाद गुप्त बरसैंया, डा० राधा वल्लभ शर्मा, श्रीनिवास शुक्ल, आदि प्रमुख विद्वानों एवं साहित्यकारों ने भाग लिया तथा शोध निबंध पढ़े। समारोह का समापन राज्य के मुख्यमंत्री श्री अर्जुनसिंह के करकमलों द्वारा सम्पन्न हुआ। इस अवसर पर श्री सिंह ने महाराज छत्रसाल के चित्र का अनावरण किया, परिषद द्वारा प्रकाशित स्मारिका 'विंध्यालोक' एवं कृष्णकवि के ग्रंथ का विमोचन किया तथा नगर भवन में आयोजित चित्र प्रदर्शनी का उद्घाटन किया जिसमें सर्वश्री एल० के० वहाल, अम्बिका प्रसाद दिव्य और राजकुमार सोनी द्वारा अपने-अपने चित्र प्रस्तुत किए गए। महाराज छतरपुर के पुस्तकालय में संगृहीत विविध प्राचीन पाण्डुलिपियों एवं ऐतिहासिक-साहित्यिक ग्रंथों की पुस्तक-प्रदर्शनी का अवलोकन भी मुख्यमंत्री ने किया। इस समारोह के अंतरगत कवि सम्मेलन और संगीत सम्मेलन भी आयोजित हुए।

'मामुलिया' समीक्षा संगोष्ठियां

टीकमगढ़। दैनिक ओरछा टाइम्स के सम्पादक श्री हरगोविन्द त्रिपाठी 'पुष्प' की अध्यक्षता में श्री वीरेन्द्र शर्मा के निवास पर आयोजित 'मामुलिया' समीक्षा-संगोष्ठी में सर्वश्री दुर्गाचरण शुक्ल, वीरेन्द्र शर्मा, पुष्प जी सहित अनेक साहित्यकारों ने बुन्देलखण्ड साहित्य अकादमी छतरपुर द्वारा प्रकाशित त्रैमासिक 'मामुलिया' को बुन्देलखण्ड जनपद का सभी दृष्टियों से प्रतिनिधित्व करने वाली पत्रिका बताया और कहा कि आज यह पत्रिका बुन्देली संस्कृति, भाषा, साहित्य, इतिहास, कला आदि विविध आयामों को प्रस्तुत करके उन सभी अभावों की पूर्ति क प्रयास कर रही है जो 'मधुकर' के बंद हो जाने के कारण नहीं हो पा रहे थे।

मऊरानीपुर। श्री वीरेन्द्र शर्मा 'कौशिक' के निवास पर सम्पन्न संक्षिप्त 'मामुलिया' चर्चा संगोष्ठी में सर्वश्री ज्ञानेन्द्र शर्मा (लखनऊ), मुरलीधर भट्ट, डा० श्यामविहारी पाण्डेय, रामशकल पाठक (पटना), एस० एन० लिटोरिया (बीना), भगवानदास सिंधी पत्रकार, हरेन्द्र शर्मा (बम्बई), मुन्नालाल दुबे, नारायणदास साहू आदि ने 'मामुलिया' के पिछले अंकों का अवलोकन किया। श्री 'कौशिक' ने 'मामुलिया' के प्रकाशन सम्बन्धी विविध समस्याओं एवं उसके उद्देश्यों को संक्षेप में प्रस्तुत किया। 'मामुलिया' की विशिष्ट रचनाओं का पाठ किया गया। सभी उपस्थित जनों ने इस प्रयास की सराहना की तथा चतुर्थ अंक—'फाग विशेषांक' को विशिष्ट उपलब्धि और संग्रहणीय बताया।

जबलपुर। लोकभारतीय जबलपुर द्वारा संयोजित 'मामुलिया' समीक्षा संगोष्ठी में 'मामुलिया' सम्पादक डा० नर्मदाप्रसाद गुप्त ने कहा कि लोक संस्कृति भारतीय संस्कृति से अलग नहीं है। लोक संस्कृति के विकास से ही

भारतीय संस्कृति के विकास को विशेष बल मिलेगा। आज आवश्यकता इस बात की है कि हम लोक संस्कृति और साहित्य के सही रूप को पहिचाने और हम 'मामुलिया' के माध्यम से ऐसा ही प्रयास कर रहे हैं। इस अवसर पर सर्वश्री पं० हरिकृष्ण त्रिपाठी, पं० रामेश्वर प्रसाद गुरु, डा० सुशीलचन्द्र दिवाकर आदि वक्ताओं ने भी 'मामुलिया' की सराहना की और कहा कि जनपदीय साहित्य की ओर रुचि पैदा करना आज के साहित्यकार का परम कर्त्तव्य है। समारोह की अध्यक्षता करते हुए वयोवृद्ध साहित्यकार श्री राजेन्द्र सिंह ब्यौहार ने कहा कि बुन्देली भाषा में शक्ति है, ओज है और अत्यधिक माधुर्य से परिपूर्ण है। अतः इसके विकास पर पूर्ण रूपेण ध्यान देने की आवश्यकता है। संगोष्ठी के आरम्भ में डा० कृष्ण कुमार हूंका ने मामुलिया सम्पादक डा० गुप्ता का अभिनन्दन माल्यार्पण द्वारा किया। अंत में एक कवि गोष्ठी भी आयोजित हुई।

इन 'मामुलिया' समीक्षा संगोष्ठियों के अतिरिक्त विविध स्थानों पर गए 'मामुलिया' सम्पादक मण्डल के सदस्यों से भी प्रबुद्ध जनों ने मौखिक चर्चा के माध्यम से 'मामुलिया' की सराहना की और इसे स्तुत्य कार्य बताया। जबलपुर, सागर और दमोह में डा० नर्मदा प्रसाद गुप्त को चार सज्जनों ने संरक्षक सदस्य बनने का आवश्वासन दिया। पटना (बिहार) में श्री वीरेन्द्र शर्मा 'कौशिक' से श्री चन्द्रदीप नारायण 'बिड़ेरिया ने संरक्षक सदस्य बनने की इच्छा व्यक्त की। दिल्ली से श्री यशपाल जैन ने लिखा—'मामुलिया' मुझे अच्छी लगी। उसकी रचनायें उपयोगी और छपाई ठीक है। सम्पादन कुशलतापूर्वक किया गया है। उसके लिए आप सबको हार्दिक बधाई।'

जबलपुर की अन्य दो सांस्कृतिक संध्यायें

मध्यप्रदेश आर्टिस्ट फोरम जबलपुर के तत्वावधान और रानी दुर्गावती संग्रहालय की कला-वीथिका में नगर की नवोदित महिला कलाकार श्रीमती कुलजीत कौर की चित्र-प्रदर्शनी १ व २ जून ८२ को आयोजित हुए। इस चित्र प्रदर्शनी का उद्घाटन पत्रकार श्री हीरालाल गुप्त ने किया और मुख्य अतिथि के रूप में बोलते हुए श्री निर्मल नारद ने श्रीमती कौर के चित्रों की सराहना की तथा निरंतर ने प्रगति-पथ पर अग्रसर होते रहने की मंगल-कामनायें की। कार्यक्रम के संचालक श्री सुधाकर सोनवलकर ने श्रीमती कौर का परिचय कराया तथा उद्घाटन समारोह के अंत में प्रचार सचिव श्री राजेन्द्र कामले ने आभार व्यक्त किया।

जिला हिन्दी साहित्य सम्मेलन जबलपुर द्वारा आयोजित काव्य-गोष्ठी का शुभारम्भ करते हुए श्री हरिकृष्ण त्रिपाठी ने काव्य-सृजकों को सलाह दी कि कविता मानवीय सम्वेदनाओं का प्रतिबिम्ब होती है। जीवन और जगत की जितनी अनुभूतियों का जितना गहरा प्रभाव कवि-मन पर होगा उतनी ही प्रखरता उसकी काव्य-रचनाओं में होगी। अस्तु प्रत्येक सफल रचनाकार को जीवन की गहराई में उसी प्रकार उतरना चाहिए जैसे वाल्मीकि, वेद व्यास, कालीदास, सूर-तुलसी, कबीर, मीर, आदि उतरे थे तभी उसकी रचनायें प्रेरक और सत्य की संवाहिकायें बन सकेंगी। तदुपरांत युगधर्म सम्पादक श्री राजेन्द्र प्रसाद तिवारी के मुख्य आतिथ्य और कविवर श्री रामकिशोर अग्रवाल 'मनोज' की अध्यक्षता में आयोजित सरस काव्य-गोष्ठी में सर्वश्री सुरेन्द्र अग्रवाल, विनोद 'शलभ', सुभाष गुप्ता, हेमराज नामदेव, राम कृष्ण नामदेव, यशवन्त पुरोहित, रामगोपाल भण्डारी, कमलनारायण राठी, द्वारिका गुप्त, अभय तिवारी, ओंकार तिवारी, वल्लभदास हंसमुख, साज जबलपुरी, प्रेम कुशवाहा, धनेश तिवारी, संदीप सपन, रघुवीर अम्बर, राजेन्द्र प्रसाद तिवारी तथा राजू ने सरस-सुन्दर काव्य-रचनाओं का सुमधुर पाठ किया। इसके पूर्व सर्वश्री गणेश प्रसाद नामदेव एवं नारायण नामदेव ने उपस्थित कवियों का स्वागत किया और अंत में श्री के० एन० रईस के गीत गान तथा डा० निर्मलेन्दु मुखर्जी के आभार प्रदर्शन के साथ कार्यक्रम का समापन हुआ।

झाँसी में नृत्य-संगीत-संध्या

झाँसी। २६ जून ८२ को लक्ष्मी व्यायाम मन्दिर में जिला सूचना एवं जनसम्पर्क विभाग द्वारा 'नृत्य-संगीत-संध्या' का आयोजन हुआ जिसका उद्घाटन जिलाधीश श्री विजय शर्मा ने किया। जिला एवं सत्र न्यायाधीश श्री परमात्मा स्वरूप की अध्यक्षता में आयोजित इस भव्य व आकर्षक कार्यक्रम में कु० कविता जैन और कु० निधि चौहान ने कत्थक नृत्य किया। साथ ही अनेक कलाकारों ने गीत, गजल व भजन प्रस्तुत किए। जिलाधीश श्री विजय शर्मा ने बताया कि स्व० राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त के स्मारक हेतु शासन की स्वीकृति प्राप्त हो चुकी है। जिला सूचना अधिकारी श्री श्याम सुन्दर दास ने आभार व्यक्त किया।

श्री विजय की चावल चित्रकला

राष्ट्रपति द्वारा पुरस्कृत एवं सम्मानित जोधपुर के युवा चित्रकार श्री विजय ने गत २६ जून ८२ को चावल पर निर्मित विविध कलात्मक चित्रों

की प्रदर्शनी जन सामान्य के अवलोकनार्थ प्रदर्शित की जिसमें लोगों ने लैंस द्वारा चावल पर बनाए गए शिवजी का चित्र, 'दीन दयाल विरद संभारी। हरहु नाथ मम संकट भारी' चौपाई, गायत्री मंत्र, श्री गोपालदास सेतिया का नाम आदि का अवलोकन किया तथा सराहना की।

आल्हा और स्वांग पर शिविर

मध्य प्रदेश आदिवासी लोक कला परिषद भोपाल द्वारा दिनांक २१ एवं २२ जून को राहतगढ़ में आल्हा और स्वांग पर एक शिविर आयोजित किया गया। बिना किसी उद्घाटन और भाषण के २१ जून को ११ बजे प्रातः से ५ बजे तक बुन्देलखण्ड की विशिष्ट गायकी आल्हा पर शोध लेख पढ़े गये? सर्वश्री शिवकुमार श्रीवास्तव, माधव शुक्ल 'मनोज' आदि विद्वानों ने अपने शोध लेखों के द्वारा आल्हा के स्वरूप और उसकी विविध गायकी के संबंध में खोज का आग्रह किया। तदुपरान्त आल्हा के सम्बन्ध में एक परिचर्चा भी हुई एवं रात्रि को विभिन्न अल्हैतों द्वारा आल्हा की लड़ाइयां प्रस्तुत की गईं किन्तु उनमें वह ओज परक शैली नहीं थी जो कि बुन्देलखण्ड के बनाफरी क्षेत्र एवं महोबा के आस-पास की आल्हा गायकी की विशेषता है।

२२ जून को ११ बजे प्रातः बुन्देली स्वांगों पर शोध लेखों का वाचन हुआ जिसमें सर्वश्री डा० कृष्णकुमार हूंका, डा० शिवकुमार 'मधुर', डा० बलभद्र तिवारी एवं डा० नर्मदाप्रसाद गुप्त ने भाग लिया। शोध लेखों से स्वांग के विविध रूपों पर प्रकाश डाला गया एवं अंततः यह प्रतिष्ठित किया गया कि बुन्देली स्वांग के विशुद्ध रूप का प्रतिनिधित्व करते हैं। रात्रि में विभिन्न मंडलियों के द्वारा स्वांगों का प्रदर्शन किया गया। दर्शकों ने 'बरेदी कौ स्वांग' की सर्वाधिक सराहना की। अंत में शिविर के संयोजक डा० धनंजय वर्मा द्वारा विद्वानों और कलाकारों के प्रति आभार व्यक्त किया गया। स्वांग और आल्हा की प्रस्तुति का सफल संचालन श्री माधव शुक्ल मनोज ने किया।

बुन्देल खण्ड साहित्य अकादमी छतरपुर की ओर से प्रकाशित एवं
इलाहाबाद प्रेस, ३७० रानी मंडी, इलाहाबाद द्वारा मुद्रित

दहेज-विहीन सामूहिक विवाहों को शासन का प्रोत्साहन

- विवाह में मितव्ययिता लाने, दहेज प्रथा मिटाने की दृष्टि से शासन सामूहिक विवाह को प्रोत्साहन देता है।

- सामूहिक दहेज विहीन विवाहों को प्रोत्साहित करने के लिए सरकार पंजीकृत सामाजिक संस्थाओं को नियमों के अनुसार अनुदान देती है।

- यह अनुदान कम से कम २५ सामूहिक विवाहों के लिए सौ रुपया प्रति जोड़े की दर से दिया जाता है।

- कमजोर वर्ग के दस सामूहिक दहेज विहीन विवाहों पर हर जोड़े को सौ-सौ रुपया अतिरिक्त अनुदान दिया जाता है।

- अनुदान पाने के लिए जरूरी है कि विवाह दहेज विहीन हों, विधिसम्मत हों और वर-वधू की उम्र कानून के अनुसार पर्याप्त हो।

क्रमांक २४८६/सु०प्र० सं०/डी०/८२

मामुलिया के एक हजार आजीवन सदस्य बनाने का संकल्प

मात्र एक सौ रुपये प्रदान कर इस यज्ञ में भागीदार बनें

अभी तक के पत्रिका-आजीवन सदस्य

- **छतरपुर**—सर्वश्री श्रीमती कमलेश अग्रवाल, हरिसिंह घोष, वीरेन्द्र शर्मा कौशिक, श्रीमती प्रमोद पाठक, नर्मदा प्रसाद गुप्त, चिरंजीव अग्रवाल, श्रीमती कांति खरे, महेशचन्द्र चौरसिया, घासीराम सेठ, अरुण श्रीवास्तव, सुरेन्द्र शर्मा, श्रीमती ललिता देवी सोनी, मोतीलाल नेहरू विधि महाविद्यालय, बाबू कन्हैयालाल अग्रवाल, बाबूराम चौरसिया एण्ड कम्पनी, विजय बहादुर ताम्रकार, कौशलकिशोर दिनेशकुमार, सुरेन्द्र तिवारी, डा०डी० एच० लाल 'सरल', केदारनाथ रावत, चिरोंजी लाल अग्रवाल, भैयालाल व्यास, भगवान दास घोष, आचार्य स्वामीशंकर मिश्र, प्रो० प्रमोद पाण्डेय, डा० अयोध्या प्रसाद द्विवेदी।

- **महोबा**—सर्वश्री डा० वीरेन्द्र 'निर्झर', बाबूलाल गुप्त, श्रीकृष्ण चौरसिया
- **उज्जैन**—श्री ब्रजलाल मिश्र
- **कर्री**—श्री आशाराम त्रिपाठी
- **पिपेट**—डा० नाथूराम चौरसिया
- **टीकमगढ़**—श्री वीरेन्द्र शर्मा
- **पृथ्वीपुर**—श्री रतिभानु तिवारी 'कंज'
- **भोपाल**—श्री प्रेम नारायण रूसिया
- **महाराजपुर**—श्री बद्री प्रसाद गुप्त
- **कबरई**—श्री किशोरी लाल गेड़ा, श्री मोतीलाल अरविन्द कुमार गुप्त
- **उरई**—श्री रामनारायण अग्रवाल
- **दतिया**—डा० कृष्ण बिहारी लाल पाण्डेय
- **दमोह**—श्री वीरेन्द्र कुमार इरोटया
- **जबलपुर**—डा० कृष्ण कुमार हूंका, डा० राजेन्द्र त्रिवेदी

- अकादमी के संरक्षक सदस्य एक हजार रुपए प्रदान कर बने रहे हैं।
- अकादमी के आजीवन सदस्य पांच सौ रुपए प्रदान कर बनने का कष्ट करें।

बुंदेल फागों के उद्भव, विकास, भाव, भाषा, संस्कृति एवं ईसुरी, गंगाधर व्यास, ख्याली तथा अज्ञात फागकारों पर प्रामाणिक सामग्री के लिए

बुन्देलखण्ड साहित्य अकादमी
की पहली भेंट

बुन्देली फागकाव्य : एक मूल्यांकन

सम्पादक

डा० नर्मदा प्रसाद गुप्त, डा० वीरेन्द्र निर्झर

मूल्य : मात्र बीस रुपये

प्रकाशक

बुन्देलखण्ड साहित्य अकादमी

छतरपुर–४७१००१, (मध्य प्रदेश)